सद्गुरवे नमः

कबीर जीवनी

अभिलाष दास

सद्गुरवे नमः
कबीर जीवनी
अभिलाष दास

प्राक्कथन

भारतीय संत-कवियों में जितनाधिक सद्‌गुरु कबीर पर लिखा जा चुका है और लिखा जा रहा है, स्यात् उतना किसी अन्य संत-कवियों पर नहीं लिखा गया है। इसका कारण है कबीर की निष्पक्षता, दो टूक कहने का ढंग और बड़े-बड़े रहस्यात्मक गुत्थियों को सरल-सहज उपमाओं के द्वारा व्यक्त करने की शैली। साथ ही, जहाँ अन्य संत-कवि मानवता एवं शाश्वत सत्य की बातें कहते हुए भी किसी परंपरा से जुड़े रहकर किसी धर्मग्रंथ, ईश्वर-अवतार, पैगंबर आदि की बैसाखी पकड़े रहे, वहाँ कबीर सारी परंपराओं से हटकर सबके सार-तत्व को स्वीकार करते हुए "पक्षपात नहिं बचन, सबहिं के हित" की बातें कहते रहे, वह भी सरे बाजार चौराहे पर खड़े होकर एक अकेला और निर्द्वन्द्व। उनकी सत्यनिष्ठा एवं निष्पक्षता ने उनके व्यक्तित्व को ऐसा महनीय मोहक और चुम्बकीय बना दिया था कि जो उनके पास गया, उनका ही होकर रह गया।

कबीरदेव ऐसे महत्तम संत हैं जो केवल भारतीय परंपरा ही नहीं, अपितु विश्व मानवता के मूल उत्स को पकड़ते हैं और सबको वहीं ले जाना चाहते हैं, जहाँ पहुँचकर वर्ण, वर्ग एवं मत-पंथगत सारे भेदभाव निस्सार हो जाते हैं और जहाँ से प्रेम की निर्मल, स्निग्ध और शीतल धारा प्रवाहित होकर सबको सराबोर कर देती है। पूरी मानवता को आत्मसात करने वाली प्रेम की निर्मल धारा में निमज्जित होकर सत्यनिष्ठ कबीरदेव ऐसे चौराहे पर खड़े हैं, जहाँ सारे रास्ते आकर मिलते हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि कबीर में पूरी मानवता का सार समाया हुआ है। "कबीर पहले भारतवासी हैं, जिन्होंने ······ सारी मानव जाति के लिए एक सामान्य धर्म का निर्भीकता

के साथ उपदेश दिया'' (पं० सुन्दरलाल)। कबीर की इसी विशालता पर रीझकर डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था—हाथी के पाँव में सबके पाँव। अतः फिराक गोरखपुरी का यह कथन नितांत सत्य है—''कबीर की वाणी आने वाले हिन्दुस्तान का सपना है जिसमें दुनियादारी और दुनिया का त्याग, आध्यात्मिक और आत्मिक जीवन का खूबसूरत संगम बनने वाला है।''

सामाजिक एवं बुद्धिजीवी प्राणी होने के नाते मनुष्य को अपने वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रिक एवं आध्यात्मिक जीवन के समुचित विकास के लिए आदर्श की जरूरत होती है। यों तो यह पूरी प्रकृति ही एक खुली किताब है, जिसकी हर क्रिया से क्षण-क्षण मनुष्य को शिक्षा एवं सत्प्रेरणा मिलती रहती है, लेकिन प्रकृति रूपी किताब को पढ़ने एवं समझने के लिए प्रातिभचक्षु एवं तीव्र संवेदनशीलता की आवश्यकता है, जिसका आम आदमी में अभाव होता है। उसके लिए तो मूर्त एवं ज्वलंत आदर्श चाहिए और ऐसा आदर्श होगा महापुरुषों की जीवनियाँ; क्योंकि ''सभी महापुरुषों की जीवनियाँ हमें याद दिलाती हैं कि हम भी अपने जीवन को महान बना सकते हैं।''

अपने आचार-व्यवहार से मानव-समाज को नयी दिशा प्रदान करने वाले संत महापुरुषों की जीवनियाँ उपलब्ध होतीं तो मानव-समाज का बड़ा कल्याण होता; परन्तु हमारा यह दुर्भाग्य रहा है कि कुछ को छोड़कर अधिकतम महापुरुषों की प्रामाणिक जीवनी आज हमें उपलब्ध नहीं है। साहित्यिक साक्ष्य एवं जनश्रुतियों के माध्यम से जो कुछ ज्ञात होता है, वह चमत्कारिक प्रसंगों से भरपूर एवं मिथ्या महिमाओं से मंडित है, ऐसी जीवनियों से कुछ विशेष श्रद्धालुओं की श्रद्धापूर्ति भले हो जाय, आत्मिक एवं बौद्धिक संतोष किसी को नहीं मिलता। मानव-मन की यह बहुत बड़ी कमजोरी है कि वह महापुरुषों को साधारण मानव नहीं रहने देता, उसके इर्द-गिर्द दैवीय चमत्कारों का स्वर्णिम वर्क लगाकर उन्हें आकाशीय बना देता है, जिनसे उनके सारे आदर्श आम आदमी की पहुँच के बाहर हो जाता है और महापुरुष पूजा की वस्तु।

सद्गुरु कबीर देव जैसे महातार्किक पुरुष को—जो सारे अंधविश्वासों एवं चमत्कारिक जालों को एक झटके में ही तोड़कर फेंक देते हैं और जो धार्मिक पाखंड एवं कुरीतियों पर करारा व्यंग्य करते हैं— किसी सतलोक का वासी एवं सत्पुरुष का भेजा हुआ बताकर उनके समस्त मानवीय गुणों पर पानी फेरने का प्रयास किया गया । सद्गुरु कबीर की उपलब्ध जीवनियों में या तो हमें अविश्वसनीय चमत्कारिक प्रसंगों का ताना-बाना दिखाई पड़ता है या फिर सतही आलोचक दृष्टि, जिसमें कमाल, कमाली, लोई तथा धनिया-रमजनिया एवं पारिवारिक कलह की क्लिष्ट कल्पना है । कबीरदेव के जीवन प्रसंगों पर स्वस्थ एवं निष्पक्ष समीक्षा बहुत ही कम दिखाई पड़ती है ।

कबीरपंथ में पारख-सिद्धान्त आचार एवं दर्शन दोनों दृष्टि से ऐसा ठोस सिद्धान्त है, जिसकी नींव वैज्ञानिक धरातल पर टिकी है । गंगोत्री से प्रवाहित होने वाली गंगा की निर्मल धारा के समान कबीरदेव द्वारा प्रवर्तित पारख सिद्धान्त की अजस्र निर्झरणी आज शत सहस्रमुखी होकर अपने संपर्क में आने वाले मानव को अकल्पनीय शान्ति प्रदान कर रही है । इसका कारण है पारख सिद्धान्त का कारण-कार्य-व्यवस्था से समन्वित निष्पक्ष वैज्ञानिक चिंतन तथा सबके प्रति श्रद्धा रखते हुए सबसे सार ग्रहण करने की विवेक-बुद्धि ।

वैसे तो पारख सिद्धान्त में आचार एवं दर्शन परक ग्रंथों की बहुलता है, परंतु चिंतन प्रधान होने के कारण अब तक जीवनी-लेखन पर इसमें ध्यान नहीं दिया गया, फलस्वरूप कबीरदेव से प्रवर्तित होने के बाद भी इस धारा में कबीरदेव की जीवनी आज तक नहीं लिखी जा सकी, यद्यपि इसकी मांग बराबर होती रही । वर्षों से अनेक संत-भक्तों के आग्रह के फल में अब जाकर यह काम पूरा हो सका और पूज्य गुरुदेव संत श्री अभिलाष साहेब जी के ग्रंथरत्नों की माला में "कबीर जीवनी" नामक एक और ग्रंथरत्न जुड़ गया ।

यह ग्रंथ 11 अध्यायों में विभक्त है, और हर अध्याय अनेक संदर्भों में । हर अध्याय में विषय का प्रतिपादन इतने सुन्दर एवं उत्कृष्ट ढंग से हुआ

है कि हर अध्याय एक स्वतंत्र ग्रंथ जान पड़ता है । इसमें एक ओर जहां सद्गुरु कबीरदेव के जीवन-प्रसंगों पर मार्मिक विवेचना करते हुए सद्गुरु के उदात्त मानवीय स्वरूप का सरल-सहज चित्रण मनमोहक बन गया है, वहीं दूसरी ओर ग्रंथ के आखिर में छोटे-छोटे संदर्भों में सद्गुरु के उपदेशों के वर्णन से पुस्तक की शोभा और बढ़ गयी है । हमें विश्वास है कि इस ग्रंथरत्न से पाठकों को एक नयी दृष्टि, नयी प्रेरणा, नयी समीक्षात्मक विवेचना प्राप्त होगी और प्राप्त होगा आत्मिक एवं बौद्धिक संतोष । साथ ही सद्गुरु कबीरदेव के बारे में फैले हुए अनेक भ्रमों का निराकरण भी होगा और पाठकों को जीवन पथ में आगे बढ़ने के लिए संबल, सत्य के लिए अमोघ निष्ठा और कर्तव्य कर्मों के संपादन के लिए अपूर्व साहस की प्राप्ति होगी और यही इस ग्रंथरत्न के लेखन का उद्देश्य है ।

कबीर संस्थान, इलाहाबाद
1 अक्टूबर, 1988

विनम्र
धर्मेन्द्र दास

विषय-सूची

सद्गुरवे नमः

कबीर जीवनी

पहला अध्याय : आविर्भाव

कबीर भारतीय होते हुए भी, विश्व-स्तर के एक महत्तम संत हैं। उनके विचार निस्सीम मानवता एवं सत्य के पोषक हैं। दिन जितने बीत रहे हैं, कबीर की विचारधारा विश्व में व्याप्त होती जा रही है। उनकी विचार-धारा सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। पूरी मानवता को समेट लेने की उनमें अपार क्षमता है। कबीर नाम सत्य का एक ज्वलंत प्रतीक है।

हमारी भारतीय-परम्परा के महापुरुषों ने अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में न स्वयं लिखा और न किसी अन्य से लिखवाया। दूसरे लोगों ने भी प्रायः महापुरुषों के जीवन-चरित नहीं लिखे। इसका फल यह हुआ कि भारतीय मनीषियों, ऋषियों एवं संतों के जीवनवृत्त के विषय में हम अनभिज्ञ हैं। पुरा-काल से ही इतिहास लिखने का प्रचलन न होने से हम अपने महापुरुषों के विषय में प्रायः नहीं जानते कि उनके जीवन की घटनाएं कैसी रहीं।

कबीर साहेब जैसे फक्कड़मस्त संत इसके अपवाद कैसे हो सकते थे? परन्तु वे अपने जीवनकाल में इतने प्रसिद्ध पुरुष हो गये थे कि उनकी महिमा में अन्य संतों ने यत्र-यत्र लिखा।

ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से विद्वानों का झुकाव कबीर साहेब पर लिखने का अधिक हुआ। यह झुकाव उत्तरोत्तर बढ़ता गया। आज-कल देश-विदेश में कबीर साहेब पर बहुत-कुछ लिखा-पढ़ा जा रहा है।

जीवन-काल

सद्गुरु कबीर का विक्रमी संवत 1456 की जेष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को काशी में जन्म तथा विक्रमी संवत 1575 की माघ शुक्ल एकादशी को मगहर में देहावसान, यह पंथ तथा अधिकतम भारतीय विद्वानों-द्वारा मान्य है। इस प्रकार कबीर साहेब की पूरी आयु लगभग एक सौ बीस वर्ष की होती है।

जन्म

काशीवासी मुसलिम जोलाहा नवयुवक नीरू अपनी पत्नी नीमा का गौना कराकर लहरतारा तालाब होकर अपने घर आ रहे थे। नीमा को प्यास लगी। वह सरोवर पर पानी पीने गयी। कहा जाता है उसने एक खिले हुए कमल-फूल पर सुन्दर बालक को किलकारी मारते हुए देखा। अर्थ है कि एक टोकरी में फूल-पत्ते की शय्या पर एक नवजात शिशु पड़ा हुआ मिला। बहुत सोच-विचार के बाद नीरू-नीमा जुलाहा दंपती उस शिशु को उठाकर घर ले आये और उसे पालने-पोषने लगे। वही बच्चा कबीर के नाम से प्रख्यात हुआ। इस प्रकार कबीर साहेब का जन्म-स्थान काशी है।[1] कुछ लोगों का विचार है कि नीरू-नीमा अपने गौना के समय नहीं, किन्तु उसके कई वर्षों के बाद लहरतारा पर कबीर-शिशु को पाये थे। यही स्वाभाविक लगता है।

चमत्कारी प्रसंग

शिशु लहरतारा तालाब पर कहाँ से आया? यह एक स्वाभाविक प्रश्न है। पुराकाल से जनमत इसका उत्तर देता रहा कि एक विधवा या कुमारी ब्राह्मणी की कोख से यह शिशु पैदा हुआ था तथा वही लोक-लाज के डर से शिशु को लहरतारा तालाब पर छोड़ गयी थी। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक

1. किसी ने कबीर साहेब का जन्म स्थान मगहर, किसी ने बलिया आदि की कल्पना की है, जो व्यर्थ की बात है।

अपना मत व्यक्त कर डाला है कि यह शिशु स्वामी अष्टानन्द का औरस पुत्र था, किन्तु वे यह बता नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने अपने गुरु रामानन्द से इसे चमत्कारी रूप देकर बताया कि यह शिशु आकाश से उतरी हुई एक ज्योति का परिणाम है ।

यदि यह तथ्य है तो कोई बुरा नहीं है, किन्तु यदि कबीर साहेब को ब्राह्मण-वंश से जोड़ने के लिए यह उपक्रम है तो यह एक हीन-भावना की उपज है । तथाकथित ब्राह्मण-वंश के अलावा कोई ऊँचा पुरुष तो पैदा नहीं हो सकता ! कबीर जैसा उच्चतम संत भला ब्राह्मण-वंश से बाहर कैसे पैदा हो सकता है ! ऐसी मानसिकता के लोगों को प्रसिद्ध संत रैदास को पहले जन्म का ब्राह्मण बताना पड़ा । परन्तु तथ्य यह है कि किसी भी कुल-परम्परा में जन्मा हुआ व्यक्ति अपने ज्ञान और पवित्र कर्मों से महान होता है । किसी कवि ने कबीर के मुख से यह कहलाने की चेष्टा की है "मैं पहले जन्म में ब्राह्मण था, लेकिन इस जन्म में जोलाहा के घर पाले जाने से जोलाहा कहा जाने लगा ।" ऐसी-ऐसी हीन-भावना की मानसिक ग्रंथियों की बातें कबीर साहेब के मुख से नहीं निकल सकतीं । कबीर कमजोर मन के आदमी नहीं थे, किन्तु पक्के संत थे । वे मनुष्य मात्र को श्रेष्ठ मानते थे । ब्राह्मण-शूद्र की तुच्छ भावनाएं उन्हें छू नहीं सकती थीं । उनका बीजक देखने से पता लगता है कि वे कितने ठोस थे । खैर, विधवा या कुमारी ब्राह्मणी शिशु को छोड़ गयी थी । परन्तु इसको गर्भवती होने का प्रसंग चमत्कार से जोड़ा जाता है । वह इस प्रकार है—

स्वामी रामानन्द ने एक कुमारी कन्या को प्रणाम करते देखकर आशीर्वाद दिया 'पुत्रवती भव' । उसने कहा—"महाराज ! मैं तो कुमारी हूँ ।" महाराज ने कहा कि मेरा आशीर्वाद निष्फल नहीं जा सकता ।

अंततः कन्या गर्भवती हो गयी । कहीं-कहीं यह भी लिखा मिलता है कि जब उसका गर्भ बढ़ गया, तो वह लज्जित होने लगी । महात्मा से निवेदन करने पर उन्होंने उसके गर्भ को अपने आशीर्वाद से खींचकर उसके

हाथ की हथेली में कर दिया। जब आशीर्वाद से गर्भ टिक सकता है, तब आशीर्वाद से गर्भ हथेली में भी आ सकता है। ऐसी सृष्टि-क्रम-विरुद्ध एवं असंभव बातें धर्म और महात्मा के नाम पर सहज ही चल पड़ती हैं। यह प्रसंग कुमारी कन्या की जगह कुछ लोग विधवा से जोड़ते हैं।

भक्त-हृदय के लोग कुमारी या विधवा के गर्भ से पैदा होने की बात नहीं सह पाते; अतः वे इस प्रसंग को चमत्कार की चरमसीमा पर ले जाते हैं। इसके साथ-साथ यह भी सत्य है कि सद्गुरु कबीर एक ऐसे सर्वोच्च कोटि के संत हैं कि भक्त लोग उन पर रीझकर कहते हैं कि वे परब्रह्म परमात्मा एवं स्वयं साक्षात हरि हैं। वे जगत के उद्धार के लिए प्रत्येक युग में इस पृथ्वी पर अवतार लेते हैं। "सर्वशक्तिमान स्वयं प्रभु कबीर साहेब जीवों को ब्रह्मत्व का उपदेश देने के लिए युग-युग में नाना नामों से प्रकट होते हैं[1]।"

कबीर साहेब के नाम-रूप के माहात्म्य में बहुत कुछ लिखा गया। ब्रह्मलीन मुनि अपने श्लोकों की टीका करते हुए स्वयं लिखते हैं—"सकल शास्त्रों

---

1. जीवानां ब्रह्मभावाय श्री कबीरः स्वयं प्रभुः।
नानानाम्ना समायाति सर्वशक्तिर्युगे युगे॥
(ब्रह्मलीन मुनि, सद्गुरु कबीर चरितम् 4/27)

भविष्य पुराण में कहा गया है—

भारते यवनाक्रान्ते निर्देष्टुं सत्यपथं नृणाम्।
हरिः कवीरनाम्ना हि कलाववतरिष्यति॥
बन्धनाज्जातिभेदादेरुन्मोक्तुं नॄन् कलौ किल।
वक्तुं तत्वं कवीरः सन् पद्मे प्रादुर्भविष्यति॥
(ब्रह्मलीन मुनि, सद्गुरु कबीर चरितम्, पृष्ठ 4)

अर्थ—कलियुग में भारतवर्ष यवनों से पीड़ित होगा, तब श्री हरि संसार को सत्पथ बताने के लिए कबीर नाम से अवतार लेंगे। जाति-भेद तोड़ने तथा तत्व उपदेश करने के लिए परमात्मा कबीर कमलपत्र पर प्रकट होंगे।

से अशक्य वर्णन सद्गुरु के नाम, स्वरूप तथा महत्व का ज्ञान होना कवियों को भी असंभव है; किन्तु विशुद्धाचरण, जितेन्द्रिय तथा आत्मज्ञानी पुरुष गुरुकृपा से श्री कबीर स्वामी के नाम, स्वरूप तथा महत्व को कथंचित जान सकते हैं।"[2]

परमात्मा कबीर साहेब ज्योति रूप में आकाश से जब काशी के लहरतारा तालाब के खिले हुए कमल फूल पर अवतरित होते हैं, उस समय का प्राकृतिक वर्णन 'सद्गुरु कबीर चरितम्' आदि ग्रंथों में बड़ा मनमोहक है। उस समय शीतल, मन्द, सुगंध वायु चलता है। मोर, चकोर, कोकिल, हंस आदि मधुर गान करते हैं। दिशाएं प्रसन्न हैं। हवा से कमल-दल झुककर मानो कबीर साहेब का नमस्कार करते हैं। बिजली चमकती है। बादल गरजते हैं। मंद-मंद वर्षा हो रही है। इसी बीच 'कोटिसूर्यं समाभासात्' करोड़ सूर्य के समान तेजपुंज कबीर साहेब एक सहस्र कमलदल पर आसीन हो जाते हैं।

नीरू-नीमा

ब्रह्मलीन मुनि 'सद्गुरु कबीर चरितम्' में लिखते हैं—द्वापर में कबीर स्वामी का अवतार करुणामय नाम से था। उन्होंने उस समय एक दंपती को मुक्त करने का वचन दिया था। वह दंपती अनेक जन्मों के बाद काशी में गौरी-शंकर तथा सरस्वती देवी के नाम से जाने जाते थे। वे कर्मकांडी ब्राह्मण थे। मुसलमानों ने जबर्दस्ती उन दोनों के मुंह में पानी डालकर उन्हें हिन्दू धर्म से गिरा दिया। उनके मुख में नीर डालने से वे नीरू-नीमा कहलाने लगे। उनको गंगा नहाना भी वर्जित हो गया। वे काशी के पश्चिम लहरतारा तालाब में नहाने लगे। वहीं पर कबीर साहेब शिशु के रूप में उन्हें मिले। वे उस बालक को घर लाने में हिचकने लगे। किन्तु बालक ने स्वयं कहा कि मैं परमात्मा हूँ। तुम्हारे उद्धार के लिए तुम्हारे घर चलूँगा। दंपती शिशु को

---

2. **तन्नामरूपमाहात्म्यमागमानामगोचरम्।**
जितेन्द्रियो विशुद्धात्मा विजानाति कथचंन ॥ वही, 5/8 ॥

अपने घर ले आये। वे उसे दूध पिलाना चाहे। शिशु रूप कबीर भगवान ने कहा कि मेरा शरीर जड़ तत्वों का नहीं है। मुझे भूख-प्यास नहीं लगती।

दंपती के बहुत आग्रह पर शिशु ने कहा कि सात दिन की नवजात बछिया लाओ। उसका दूध पीऊँगा। सात दिन की एक बछिया लायी गयी। उसके स्तन के नीचे पात्र रख दिया गया। पात्र दूध से भर गया। कबीर रूप शिशु ने ग्रहण किया।

यहाँ कबीर साहेब की भगवत्ता तो चित्रित की ही गयी है। नीरू-नीमा का भी ब्राह्मणीकरण किया गया है।

नामकरण

कबीर कसौटी ग्रन्थ में बाबू लहनासिंह ने लिखा है कि नीरू ने मौलवियों को बुलाया कि बच्चे का नाम रख दिया जाय। क्रमशः सात मौलवी आये। सबके कुरान-किताब में कबीर, कुबरा, किबरा तथा अकबर ये चार नाम निकले। कबीर का अर्थ है महान तथा कुबरा और किबरा कबीर का बहुवचन है; अकबर का अर्थ भी महान है। अतएव चारों नाम का अर्थ महान होता है। मौलबी लोग एक गरीब जुलाहे के पोषित बच्चे का नाम कबीर नहीं रखना चाहते थे जिसका अर्थ ही महान है। परन्तु जब शिशु ने ही बता दिया कि मैं महान परमात्मा हूँ तब मुल्ला लोगों को हार-थककर कबीर नाम रखना पड़ा।

ब्रह्मलीन मुनि ने 'सद्गुरु कबीर चरितम्' में कबीर नाम का भी संस्कृत-करण कर डाला है। यह विषय विस्तार से है। यहाँ सब देना सम्भव नहीं। ब्रह्मलीन मुनि संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। उनके लिए यह सब करना बायें हाथ का खेल था। उन्होंने कबीर न लिखकर कवीर लिखा है। उन्होंने लिखा है जो शरीर में रमने वाला है, जो ईश्वर को प्राप्त कराता है, जिसकी कृपा से आतमसाक्षात्कार हो तथा जो अपनी अद्भुत कवित्व शक्ति से क्रांतिदर्शी कवियों के हृदय को मुग्ध करे वह कवीर है।

कबीर महिमा

पानी ते पैदा नहीं, श्वासा नहीं शरीर ।
अन्न आहार करता नहीं, ताको नाम कबीर ।।
अनंत कोटि ब्रह्मांड में, बंदीछोर कहाय ।
सो तो पुरुष कबीर है, जननी जना न माय ।।
(गरीब) चौरासी बंधन कटे, कीली कलप कबीर ।
भवन चतुर्दश लोक सब, टूटै यम जंजीर ।।
(गरीब) जल थल पृथ्वी गगन में, बाहर भीतर एक ।
पूरण ब्रह्म कबीर है, अवगत पुरुष अलेख ।।
(गरीब) सेवक होकर उतरे, इस पृथ्वी के माहिं ।
जीव उधारन जगत गुरु, बार बार बलि जाहिं ।।
(गरीब) साहिब पुरुष कबीर हैं, योनि परे सो जीव ।
लख चौरासी भरमहीं, काल जाल घट सीव ।।
(गरीब) साहिब पुरुष कबीर ने, देह धरी नहीं कोय ।
शब्द स्वरूपी रूप है, घट घट बोलै सोय ।।
अनंत कोटि अवतार है, माया के गोविंद ।
करता होय ये उतरे, फेर परे यम फंद ।।
त्रिलोकी का राज्य है, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
ऊँचा धाम कबीर का, बानी बिरह बिदेश ।।
पाँच बरस के जब भये, काशी मांझ कबीर ।
गरीबदास अजब कला, ज्ञान ध्यान गुण सीर ।।

(गरीबदास की बाणी, कबीर कसौटी, पृष्ठ 10 से उद्धृत)

प्रसिद्ध वैष्णव भक्त जीवन जी महाराज लिखते हैं—

द्वापर कान्हा प्रगट्यो, त्रेता में रघुवीर ।
कलि काल में जीवणा, प्रगटे संत कबीर ।।
यमुना तीरे यादवो, सरजू तीरे रघुवीर ।
गंगा तीरे जीवणा, प्रगटे संत कबीर ।।

सब संतन में जीवणा, कारीगर कबीर ।
घाट बनायो सोभितो, रीझ भये रघुवीर ॥
निर्भय घाट कबीर का, सब संतन लीन्हीं बाट ।
ताके कछु नहिं जीवणा, जाके मन में आंट ॥
सबके सद्गुरु कबीर जी, ममता करो जनि कोय ।
औ दुनिया को जीवणा, सद्गुरु घर की जोय ॥
हुआ न होसी जीवणा, जैसा संत कबीर ।
जग तारन को अवतरे, बीरन में महाबीर ॥
दो अक्षर के आंतरे, राम कबीरा एक ।
जो समझत है जीवणा, सद्गुरु दियो विवेक ॥
प्रेम रूप कबीर जी, जीवन गयो गरकाय ।
नाम रूप दोनों मिटे, अकथ कह्यो न जाय ॥
(उदाधर्म पंच रत्नमाला, जीवन जी की वाणी)

परम वैष्णव संत श्री नाभादास जी महाराज लिखते हैं—

कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षटदरसनी ।
भक्ति विमुख जो धर्म ताहि अधरम करि गायो ॥
योग यग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ॥
हिन्दू तुरुक प्रमान रमैनी शब्दी साखी ।
पच्छपात नहिं बचन सबहिं के हित की भाखी ॥
आरूढ़ दशा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिन भनी ।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षटदरसनी ॥

सारांश

नीरू-नीमा ने एक नवजात शिशु को काशी के लहरतारा तालाब पर पाया । उन्होंने उसे पाला-पोषा । मुसलिम परिवार में पाले जाने से बच्चे का

अरबी भाषा में कबीर नाम पड़ा। यह महान बीज लेकर आया था और इसे महान होना था, संयोग से नाम भी महान अर्थात् कबीर पड़ा।

महान पुरुषों एवं महान संतों के प्रति लोगों के हृदय में श्रद्धा होना स्वाभाविक और शुभगुण है। परन्तु मनुष्य इतने ही पर नहीं रुका रहता। वह श्रद्धातिरेक भी करता है। वह महापुरुषों के जीवन में चमत्कार भी जोड़ता है क्योंकि वह उनके सामने संसार को झुकाना चाहता है। ब्रह्मलीन मुनि सद्गुरु कबीर चरितम् (12/68) में स्वयं लिखते हैं—"चमत्कारं विना कश्चिन्नमते नैव कंचन" अर्थात् चमत्कार के बिना कोई किसी के सामने नहीं झुकता।

प्रायः सभी मत के भक्त अपने इष्ट तथा अपनी ओर संसार को झुकाने के लिए अपने श्रद्धेय पुरुषों के इर्द-गिर्द चमत्कारों का एक गहरा कुहरा तैयार करते हैं। इस प्रक्रिया में अनुयायियों की भीड़ तो बढ़ जाती है, किन्तु उन मूल पुरुषों के सत्य चेहरे संसार से ओझल हो जाते हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकर, कबीर, नानक आदि संसार के सभी महापुरुषों के साथ उनके भक्तों ने यही काम किया है।

जब किसी महापुरुष की उत्पत्ति लौकिक नैतिकता का उलंघन करके होती है या उनके जन्मदाता माता-पिता का पता नहीं होता है, तब भक्त जन उनके जन्म-रहस्य पर दैवी चमत्कार का परदा डालने का प्रयास करते हैं। मरियम की मंगनी (सगाई) जब यूसुफ बढ़ई से हुई थी, उसके पहले ही उनको गर्भ रह गया था। वही गर्भ ईसा के रूप में पैदा हुआ। तो भक्तों को कहना पड़ा कि ईसा ईश्वर का पुत्र है। श्रद्धेया माँ सीता नवजात शिशु के रूप में जनक को खेत में पड़ी हुई मिलीं।[3] उनके माता-पिता का पता न था। तो भक्तों को कहना पड़ा कि वे देवी थीं। वे पृथ्वी फोड़कर निकली थीं तथा अंत में पृथ्वी में समा गयी थीं। इसी प्रकार जब सद्गुरु कबीर को लहरतारा तालाब के पास नवजात शिशु के रूप में पाया गया और उनके जनक-जननी का पता न लगा, तो कहा गया कि वे परमात्मा थे। आकाश से उतरकर आये थे और फूल पर प्रकट हो गये थे तथा अंत में फूल में समा गये थे।

---

3. बाल्मीकीय रामायण 1/66/13-14; 2/118/28-31; तथा 5/16/6।

कबीर, ईसा एवं माँ सीता का महत्व उनके ईश्वर, ईश्वर-पुत्र एवं देवी होने में नहीं है, किन्तु उनके त्याग-तपस्या तथा मानवता के उच्चादर्श में है। ये तीनों ही मानव जाति के परम श्रद्धेय हैं।

यदि कबीर साहेब के लिए परमात्मा होने का चमत्कार कोई इसलिए भी जोड़े कि वे मुसलिम-परिवार[4] में पलने से हिन्दुओं-द्वारा नीची दृष्टि से देखे जा सकते थे; तो यह मानसिक दुर्बलता ही है। वेदव्यास धीवरी से, पराशर भंगिनी से, वसिष्ठ उर्वसी अप्सरा से, भरद्वाज शूद्रा से, नारद दासी (शूद्रा) से पैदा हुए; परन्तु ये सब अपने उच्च गुणों से पूज्य थे। एक धीवरी के बच्चे व्यास-रचित गीता, भागवत आदि हिन्दू पंडितों के मुख्य ग्रन्थ हैं। हिन्दू तो शूकर, मछली, आदि को भगवान के अवतार मानकर पूजता है। वह सन्त का अनादर कैसे कर सकता है। हिन्दू, जातिवादी होते हुए भी विनम्र और दूसरों के गुणों को आदर देने वाला समाज है। इसका फल यही है कि किंचित अपवाद को छोड़कर कबीरपन्थ का पूर्ण प्रचार हिन्दू समाज में ही है। वैसे कबीर साहेब के विचारों को विश्व के सभी लोग आदर देते हैं, क्योंकि वे सार्वजनिक एवं सार्वभौमिक हैं। कबीर पर रीझकर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"कबीर सबसे न्यारे थे। हिन्दू, मुसलमान, योगी, गृहस्थ, साधु, वैष्णव सव थे भी और कुछ भी नहीं थे। कबीर भगवान के नृसिंहावतार की मानव-प्रतिमूर्ति थे। वे असम्भव परिस्थितियों के मिलन-बिन्दु पर खड़े थे।[5]

---

4. व्यास, वसिष्ठ, हनुमान, शंकराचार्य आदि की उत्पत्ति देखिए 'कबीर दर्शन' के प्रथम अध्याय का तीसरा संदर्भ 'जन्म रहस्य'। और भी देखिए वृहदारण्यक उपनिषद् के अध्याय 2, ब्राह्मण 6 एवं अध्याय 4, ब्राह्मण 6 में करीब पचास ऋषियों के नाम जिनकी मात्र माता का पता है, पिता का नहीं। यह मातृसत्ताक वंश का प्रभाव था। श्रीराम चारों भाइयों को खीर-भोजन से पैदा होना बताकर किसी बात पर परदा डालने का प्रयत्न है। महाभारत के अधिकतम पात्रों की उत्पत्ति कैसे हुई है, यह सब जानते हैं।
5. कबीर, पृष्ठ 181।

अनन्तदास कृत कबीर साहेब की परिचयी का सार

(अनंत दास जी का काल विक्रम संवत की 17वीं शताब्दी)[1]

काशीवासी जोलाहा कबीर सन्तों के सत्संग के पक्षधर थे। उनको आकाश वाणी हुई कि रामानन्द से दीक्षा लो तब मेरा दर्शन पाओगे। कबीर रामानन्द के रास्ते में पड़ गये। पैर की ठोकर लगी। उन्होंने राम-राम कहा। कबीर ने मंत्र मान लिया। पीछे रामानन्द ने कबीर को दीक्षा देकर उन्हें शिष्य रूप में स्वीकारा।

रामानन्द को सिष है, कबीरा ताको सन्त।
भगति दृढ़ावन औतर्यो, गावै दास अनन्त॥

कबीर ने माया-मोह छोड़कर दृढ़ भक्ति की। उन्होंने सन्तों की सेवा खूब की। एक दिन हरि, भक्त का रूप बनाकर, कबीर के पास आकर उनकी भक्ति और दान की प्रशंसा करने लगे और उन्होंने उनसे वस्त्र मांगा। कबीर ने आधा देना चाहा। उन्होंने पूरा मांगा। कबीर ने पूरा कपड़ा दे दिया और घर न आकर कहीं छिप गये। घर का परिवार तीन दिन से भूखा रह गया।

भगवान को दया लगी। वे बहुत-सा धन लाकर कबीर की माता को देने लगे। माता ने उसे अस्वीकार किया कि कबीर जब यह सब देखेंगे तब वे हमें बहुत खरा-खोटा कहेंगे। कबीर किसी का दान नहीं लेते—

कबीरा कबहु लेइ न मांगे।
लाख टका जो धरीऐ आगे॥

तब भगवान ने कहा राजा भगवान विश्वनाथ के दर्शनार्थ आये हैं। उन्होंने कबीर को यह सब धन चढ़ाया है। कबीर ने इसे नहीं लिया, इसलिए राजा ने मेरे हाथों इसे आपको दे आने के लिए कहा है। भगवान सब धन कबीर के घर छोड़ गये। जब कबीर ने आकर माता से पूछा कि यह सब धन किसने दिया? तब माता ने सब कथा कही। कबीर ने अपने ऊपर भगवान की इतनी

---

1. सहदेव कुमार 'द विजन आफ कबीर' पृष्ठ 10।

कृपा देखकर तनना-बुनना छोड़ दिया—

दोहा—तानों बानों छांडि कैं, रह्यो चरन चित लाय।
अब तौं राम दया करो, कसि पचि मरै बलाइ॥

कबीर साहेब ने उस सारे धन को भक्तों में बांट दिया। यह सब देख-सुनकर ब्राह्मण और संन्यासी कुपित हो गये कि कबीर ने पाये हुए धन को भक्तों को दे दिया, हम लोगों को कुछ नहीं दिया। वे सब कबीर के घर जा कर हल्ला-गुल्ला करने लगे।

ब्राह्मण-संन्यासियों की यह धींगा-धींगी और क्रोध देखकर विवेकी-कबीर ने कुछ नहीं कहा। पीछे उनसे कबीर ने कहा—अब तो घर में अन्न नहीं है कि आप लोगों को कुछ दूं। आप छाया में बैठिये, मैं ले आऊं। इतना कहकर कबीर वहाँ से टल गये। अब क्या किया जाय, यह उनके मन में संशय हुआ।

ठींगा ठींगी षीजब ही देखी। कुछ न कह्यौ कबीर विवेकी॥
अब तो नांज नहीं घर मांही। लै आऊँ तुम बैठो छांही॥
इतनी कहि कबीर टरि गयऊ। कैसो कै मन संसौ भयऊ॥

कबीर पर ऐसा संकट देखकर भगवान ने मैदा, चावल, शकर, घी आदि बहुत सामग्री कबीर के घर में ला दी। यह सब देखकर ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। किसी ने कहा कबीर खजाना पा गये हैं, चलो दीवान को बता दो। एक ने कहा—अच्छा है जी, कबीर दिल के उदार हैं। कबीर का रूप धारण किये हुए भगवान ने सबको ढाई-ढाई सेर खाद्य सामग्री दी। जब स्वार्थ पूर्ण हो गया तब ब्राह्मण-संन्यासियों का क्रोध जाता रहा और दान पा-पाकर कबीर की प्रशंसा करते हुए सब अपने घर गये।

दोहा—साचो भगत कबीर है, कासी प्रगट्यौ आइ।
जो वाकी निंद्या करै, सोई नरकौं जाइ॥

तब एक ब्राह्मण का रूप धारणकर भगवान कबीर के पास गये, जो कहीं छिपे बैठे थे। भगवान ने कबीर से कहा—तुम यहाँ क्यों बैठे हो। जाओ कबीर के घर। वहाँ सबको शकर, घी सहित चावल-आटा आदि ढाई-ढाई-सेर दान मिल रहा है। देखो, मुझे भी मिला है।

यह देख-सुनकर कबीर अपने घर आये और भगवान की कृपा जानकर बहुत प्रसन्न हुए। वे देखते हैं कि घर में बहुत सामान पड़ा है उनमें से अभी भी ब्राह्मण ले-लेकर जा रहे हैं। कबीर साहेब हरि के गुणगान करने लगे। कबीर साहेब की महिमा चारों ओर बहुत फैल गयी। लोग दूर-दूर से उनके दर्शन के लिए आने लगे और सोना, चांदी तथा कपड़ा चढ़ाने लगे, किन्तु कबीर साहेब यह सब कुछ नहीं लेते थे। वे भक्तों के दिये हुए केवल भोजन-वस्त्र लेते थे। उनके यहाँ दिन ब दिन भक्तों की भीड़ बढ़ती गयी। उनको भजन में विघ्न पड़ने लगा।

कबीर ने सोचा कि निर्विघ्न भजन के लिए मान-बड़ाई को अलग धर देना है। उन्होंने एक वेश्या को साथ में लिया और बोतल में चरणोदक भरा जो दूसरे के देखने में शराब लगता था। वही कबीर साहेब पीते थे और सड़क पर वेश्या के साथ झूमते हुए चलते थे। नगर के लोग अचंभे में पड़ गये। कई लोग कबीर की निंदा करने लगे। इतने में कबीर राजा के पास पहुँच गये। राजा अन्य दिन कबीर को सिंहासन देता था। आज राजा ने कबीर को आदर नहीं दिया और उन्हें सभा के बाहर बैठा दिया।

इसी अवसर पर कबीर ने अपने पैरों पर जल ढाल लिया। राजा ने कारण पूछा। कबीर ने कहा कि जगन्नाथ धाम में वहाँ के पण्डे का पैर जल गया है। मैंने उसे बुझाया है। राजा ने कबीर को कहा कि तुम पाखण्ड कर रहे हो। कबीर ने कहा कि जगन्नाथ आदमी भेजकर पता लगा लो। राजा ने जगन्नाथ आदमी भेजकर पता लगवाया तो यह बात सिद्ध हुई और पण्डे ने कहा कि अमुक तिथि को मेरा पैर जल गया था और तुरन्त काशी के सन्त कबीर ने मेरे पैर पर जल ढालकर बचाया था।

राजा कबीर से बहुत डर गया। उसने कबीर के पास चलकर क्षमा-याचना के लिए सोचा। राजा अपने गले में कुठारी लटकाकर और सिर पर घास का बोझा उठाकर परिवार सहित कबीर के दर्शनार्थ चला—

दोहा—कांध कुठारी घालिकै, माथे तृण को भार।
कुटुंब सहत राजा चल्यो, कासी को गत्यहार॥

राजा बीरसिंह बघेल लज्जा छोड़कर कबीर की शरण में पहुँचे। कबीर ने उन्हें इस दशा में आते देख दौड़कर कहा ये बोझा गिरा दो। राजन ! मुझे न वैर है न मोह है, न मेरी दृष्टि में कोई राजा है और न दीन। राजा ने कबीर का दण्डवत किया। कबीर ने उन्हें गले से लगा लिया। राजा तथा उनके परिवार ने कबीर के पैर पकड़ लिये। कबीर साहेब ने उन्हें बहुत सांत्वना देकर भेजा।

इधर दिन-दिन कबीर साहेब की महिमा बढ़ती गयी। लोग उनके दर्शन के लिए भीड़ लगाने लगे। काजी, मुल्ला झंझट करने लगे और ब्राह्मण-वैश्य अत्यन्त अपराधी हैं ही—

काजी मुलां करै उपाधी। बाभंन बनियाँ अति अपराधी॥

इस प्रकार काजी, मुल्ला, ब्राह्मण, बनिया विरोध करने लगे। घर में कबीर की माता भी कबीर की भक्ति का विरोध करती थीं। इतने में शाह सिकंदर लोदी बनारस आया। फिर तो ब्राह्मण, मुल्ला तथा कबीर की माता भी उसके पास गयी। सबने कबीर की शिकायत की—

"ऐसी काहू ना करी, जैसी करी कबीर"।

सिकन्दर ने कहा कि क्या बात है ? मुल्ला तथा पण्डितों ने कहा—कबीर ऐसा है जो तीर्थ, वेद, नौ ग्रह पूजा, सूर्य-चन्द्र-पूजा, शंकर, जगदंबा, शारदा, गणेश, एकादशी व्रत, होम, श्राद्ध, जगत पूज्य ब्राह्मण, माता, पिता, बहन, भानजी, सब देवता, सब धर्मों की आशाओं, छह दर्शन आदि सबकी निंदा करता है। उसका मार्ग हिन्दू और मुसलमान दोनों से अलग है। जब तक कबीर काशी में रहेगा, हमें कोई नहीं मानेगा—

निंदै तीरथ निंदै बेदू। निंदै नवग्रह सूरज चन्दू॥
निंदै सिंकर निंदै माई। निंदै सारद गणपत राई॥
निंदै ग्यारस होम सराधा। निंदै बांभन जग आराधा॥
निंदै मात पिता की सेवा। बहन भानजी अरु सब देवा॥
निंदै सकल धरम की आसा। सट दरसन अरु बारह मासा॥

ऐसी विधि सब लोग बिगारा। हींदू मुसलमान सूँ न्यारा॥
तातै हमैं न मानें कोई। जब लग जुलहा कासी होई॥

सिकन्दर लोदी ने क्रुद्ध होकर कबीर को बुलवाया। बादशाह के सामने काजी-मुल्ला कबीर को काफिर कहने लगे। कबीर साहेब ने कहा—हे काजी-मुल्ला, तुम काफिर हो जो बकरी, मुरगी, गाय आदि मासूम जीवों की हत्या करवाते हो—

कौन कितेब जो गाय कटाई।
बकरी मुरगी किन फुरमाई॥
जितना देषूँ आतम घाती।
तितनां को जम तोड़े छाती॥

सिकन्दर लोदी उक्त बातें सुनकर अधिक क्रुद्ध हो गया। उसने कबीर को जंजीर में बंधवाकर गंगा में डलवा दिया। जंजीर टूट गयी और कबीर पानी पर बैठ गये। इसके बाद कबीर को एक मकान में बन्दकर और उनके साथ ईंधन भरकर आग लगा दी गयी। लकड़ी-मकान सब जल गये। किन्तु कबीर अधिक चमकते हुए निकल आये।

जै जै कार भयो जग मांही।
काजी बाभन बहुत रिसाही॥

अबकी बार सिकन्दर लोदी ने कबीर को मारने से लिए मस्त हाथी छुड़वा दिया। तमाशगीर डर से दूर भाग खड़े हुए, परन्तु कबीर अडिग रहे। हाथी ने कबीर के पास सिंह बैठा हुआ देखा, इसलिए वह भाग खड़ा हुआ।

उक्त बातें देखकर सिकन्दर लोदी ने डरकर क्षमा माँगी। जो कबीर को कष्ट देता है, कबीर उसके साथ भला करते थे।

जेकों आगे औगुन ठाने।
ताको साथ भलो करि मानै॥

सिकन्दर लोदी ने कबीर के पैर पकड़ लिये और वह कबीर से कहने लगा कि आप चाँदी, सोना, कपड़ा, गाँव, परगना माँग लें, मैं सब दूंगा।

परन्तु कबीर ने कहा—

कहैं कबीर न मांगू माया । राजा रंक सबै इन षाया ॥

अन्तत :—

जहाँ-जहाँ कष्ट तहां हरि तूठा ।
काजी बांभन होइ गया भूठा ॥

तब सिकन्दर लोदी ने कबीर के सामने सिर भुका दिया ।

जल बोर्‌यो पावक जर्‌यो, बिनसौ नहीं शरीर ।
गज तौरत हरि राषीयौ, नृभै भयौ कबीर ॥

काजी-ब्राह्मण उक्त षडयंत्र से जब असफल हो गये, तब उन्होंने एक दूसरा प्रपंच रचा। चार ब्राह्मणों ने मूड़ मुड़ाकर, माला-तिलक लगाकर असी कोस तक जितने गांव थे सब में यह कहकर निमंत्रण दे दिया कि कबीर एक बड़ा भंडारा कर रहे हैं, वहाँ सब आओ। कबीर के आश्रम पर समय आने पर बड़ी भीड़ लग गयी। कबीर भयवश कहीं छिप गये कि इतने लोगों को मैं क्या खिलाऊँगा। किन्तु हरि ने अपनी माया के बल पर पांच दिनों तक उस अपार संत-भक्तों की भीड़ को खिलाया-पिलाया और जिसने जो मांगा उसे वह दिया गया। इस बीच कबीर छिपे रूप में भगवान की सब लीला देखते रहे।

राम और कबीर की सदैव मैत्री रही। फलतः, तीसरे बीच में टपकने वाले ब्राह्मण क्रुद्ध होकर रह गये।

राम कबीर सदा बनि आई ।
तीजै बाभन रहे रिसाई ॥

इसके बाद एक बरस बीत गया। फिर बैकुंठ धाम ,से एक अप्सरा को विष्णु भगवान ने समझा-बुझाकर कबीर को छलने के लिए भेजा। किन्तु कबीर तो पांचों इन्द्रियों को वश में कर अपने आत्म-तत्व एवं स्वस्वरूप को पहचान लिये थे और हरि में रत थे। उन्हें अप्सरा क्या करती ?

दोहा—पांच इन्द्री बसि करी, चीन्हि लियो निजतन्त ।
कबीर हरि का भावता, गावै दास अनन्त ॥

अप्सरा ने कबीर के सामने बहुत छल-बल किया परन्तु सफल न हुई। कबीर ने कहा—

हम सूँ तुम सूँ कौन संगाता।
जल महि अगनि न लागै माता॥

तथा—**पाथर कैसे पानी भीजै।**

अप्सरा ने कहा—"नीची दृष्टि कबीर तुम्हारी। देखौ मेरा रूप निहारी।" मेरे लिए लोग जप, तप करते हैं तो भी मुझे नहीं पाते और मैं तुम्हारे लिए स्वतः आयी हूँ। जब तक मेरा सुख न लोगे, तब तक तुम्हारा जन्म व्यर्थ है।

कबीर ने कहा—हे माता, तुम्हारी वासना तो नरकप्रद है। एक पिटारी में सांप और चूहा बंद थे। साँप ने चूहे से कहा कि इसे काट दो हम दोनों निकल चलें। चूहे ने पिटारा काट दिया, परन्तु सांप चूहे को खाकर पिटारे से निकल गया। इसी तरह तुम्हारी मिताई है।

दोहा—बहुत जतन करि पचि भई, भया कबीर अडोल।
गई अपछरा घरि आपणें, रह्या भगत का बोल॥

अप्सरा लज्जित होकर बैकुण्ठ धाम चली गयी और उसने विष्णु भगवान से निवेदन किया कि सूर्य पूर्व से पश्चिम भले उग जाय, पर्वत उठकर आकाश में भले चला जाय और ध्रुव तारा उत्तर से दक्षिण भले उगने लगे किन्तु कबीर माया में विमोहित नहीं हो सकते।

जो रवि पछिम उदै करांही। परवत टारि अघास सराहीं॥
धू दक्खन जो देई पयांना। तउ न कबीरा होई अयानां॥

फिर विष्णु भगवान खुश होकर कबीर के पास आये और उन्हें दर्शन दिये। विष्णु भगवान ने कहा हे कबीर! तुम जो मांगो, मैं दूँगा। कहो तो मैं तुम्हें पृथ्वीपति तथा लोकों का अधिपति बना दूँ। कहो तो तुम्हें अष्ट सिद्धि, नौ निद्धि दे दूँ। वाचा सिद्धि, दो शरीर धरकर चलना आदि चमत्कारी बना दूँ।

क़बीर साहेब ने कहा मुझे कुछ नहीं चाहिए। यह सुनकर विष्णु भगवान खुश हो गये। उन्होंने कबीर के सिर पर अपने चारों हाथ रखकर उनको अजर-अमर बना दिया।

कबीर ने बीस वर्षों तक तो साधारण रूप से जीवन जीया, किन्तु आगे चलकर सौ वर्षों तक साधना-भक्ति की। फिर उन्होंने इस भ्रम को तोड़ने के लिए कि काशी में मरने से मुक्ति तथा मगहर में मरने से गधा होना पड़ता है, मगहर में शरीर छोड़ने का निश्चय किया। हिन्दू-मुसलमान दोनों कबीर साहेब के शरीर को जलाने तथा गाड़ने के लिए विवाद करने लगे, तो कबीर साहेब बत्तीस बोझ फूल मंगाकर उसमें सो गये। सब संत नाचने-गाने लगे। कबीर साहेब का शरीर तो अमर था। वह छूटा नहीं। वे सदेह बैकुण्ठ चले गये। वहाँ केवल फूलों की ढेरी रह गयी।

भक्तों को आश्चर्य हुआ। लोग उदास होकर अन्न छोड़ दिये।

अंततः कबीर साहेब की महिमा में अनंतदास की केवल छह चौपाइयों को भावार्थ सहित लें—

"कबीर के बिना काशी में अंधियार हो गया। जैसे चन्द्रमा के बिना केवल तारों की रात। जैसे बारात में दुल्हा न हो, जैसे घी के बिना भोजन फीका है और जैसे कपड़े के बिना शरीर अशोभन होता है, वैसे कबीर साहेब के बिना काशी शोभाहीन थी। कबीर जहां-जहां जाते थे उनकी चौगुनी बड़ाई बढ़ती जाती थी, बैकुण्ठ में जाने पर भी उनकी सर्वत्र प्रशंसा हो रही है। ब्रह्मा कबीर साहेब की अगवानी करते हैं और इन्द्र उन्हें स्वयं उठकर सिंहासन देते हैं। विष्णु कबीर साहेब से कहते हैं कि बैकुण्ठ आपका ही है। आप सदैव बैकुण्ठ में ही रहो, ऐसा मेरा भाव है।" मूल चौपाई इस प्रकार है—

कबीर बिना कासी अंधियारा। ज्यूं चंदा बिन दीसै तारा॥
ज्यूं बरात में दुलहा नाहीं। ज्यूं घृत बिना जिवनार न सांई॥
ज्यूं बसतर बिन देह मलीना। यूं कबीर बिन कासी हीना॥
जहाँ जहाँ कबीर चलि जाई। तहाँ तहाँ चौगुनी बड़ाई॥

ह्यौ विरंचि आगे ह्वै लेही । सुरपति टारि सिंहासन देही ॥
विष्णु कहै बैकुण्ठ तुम्हारो । बसौ सदा इह भाव हमारौ ॥

समीक्षा

उक्त कथा करीब तीन सौ सत्तासी (387) चौपाइयों एवं तेरह (13) दोहों में चित्रित है। इसके लेखक अनंतदास जी हैं जो वैष्णव प्रतीत होते हैं। क्योंकि उन्होंने कथा में विष्णु और बैकुण्ठ की वरीयता बनाये रखी है। लेखक यदि पौराणिक कबीरपंथी होता तो कबीर साहेब को ही पूर्ण परब्रह्म चित्रित करता, जैसे कि पौराणिक कबीरपंथी ग्रन्थों में है।

उक्त पूरी कथा चमत्कारों तथा दैवी कल्पनाओं से रंजित है। कोई ऐसा हरि या भगवान नहीं है जो आकाशवाणी करता हो, धरती पर आकर किसी संत-भक्त के घर में अतिथियों का सत्कार करता हो, किसी संत-भक्त को जल, आग तथा मस्त हाथी से बचाता हो, बैकुण्ठ से अप्सरा भेजता हो और स्वयं चार भुजा वाला बन आकर दर्शन देता है।

उक्त कथा का सार यही है कि जो सत्य का एकनिष्ठ उपासक होता है, भले ही कुछ समय के लिए कुछ स्वार्थी तत्व उससे चिढ़ जायँ अंततः पूरी सत्ता उसका सहायक होती है। सत्य भगवान है। जो व्यक्ति सत्य का पालन करता है, सत्य उसकी रक्षा करता है। संसार में सर्वत्र कारण-कार्य की व्यवस्था है। सत्य ऐसा कारण है जिसका कार्य सदैव मंगलमय है। स्वयं कबीर देव का वचन है—

साँचे श्राप न लागे, साँचे काल न खाय।
साँचहिं साँचा जो चलै, ताको काह नशाय॥

(बीजक, साखी 308)

कबीर साहेब सत्य के उपासक थे, इसलिए जनता तो उनके साथ थी ही, पुरोहित और राजा जो विरोधी थे, उन्हें भी अंततः उनके सामने झुकना पड़ा।

कथा में चित्रित अपनी महिमा को घटाने के लिए कबीर साहेब का नकली शराब-पान तथा वेश्या-संगत का दिखावा करना तथा राजा के सामने अपने पैर पर जल डालकर सैकड़ों मील दूर जगन्नाथ के पंडे के जलते हुए पैर को बुझाना—दोनों ही काल्पनिक हैं। लेखक ने यह भी नही विचार किया कि जब वे अपनी महिमा घटाने के लिए नकली शराब एवं वेश्या का दिखावा कर रहे हैं, तब उसके साथ तुरंत ही अपनी महिमा बढ़ाने वाले चमत्कार (पैर पर जल डालने) का काम कैसे करेंगे। कबीर-जैसे उच्च कोटि के संत शराब एवं वेश्या का दिखावा भी नहीं करेंगे। सत्य के अटूट विश्वासी अपने सत्य पर परदा डालने का झूठा प्रयास कैसे करेंगे। अपने पैर पर जल डाल कर सैकड़ों कोस की दूर की आग को बुझाने जैसी पाखण्ड की बातों के कबीर घोर विरोधी हैं।

इन कथाओं से इन बातों पर प्रकाश पड़ता है कि कबीर साहेब की सत्य-निष्ठा पर पुराकाल से ही संत-भक्त एवं साधारण जनता अत्यन्त प्रभावित रही है और उनको केवल उच्च कोटि का संत ही न मानकर भावविह्वलता के कारण चमत्कारी, दैव, अवतार तथा परब्रह्म भी मानती रही है। किन्तु विवेकियों का कर्तव्य है कि इन चमत्कारों एवं दैवी चकाचौंधों में से कबीर साहेब का सत्यनिष्ठ मानवीय रूप निकाल लें। यही उनके तथा अपने साथ न्याय होगा।

दूसरा अध्याय : गुरु विचार

कबीर साहेब जिस परिवार में पाले-पोषे गये थे वह परिवार एक-दो पीढ़ी पूर्व ही हिन्दू से मुसलमान हुआ था, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि कई विद्वानों की ऐसी राय है और यह सच भी लगती है। काशी की हिन्दू कोरी जाति जो कपड़ा बुनती थी, वही हिन्दू से मुसलमान बन गयी। इसलिए इस परिवार में हिन्दू संस्कार अवशेष थे तथा तत्काल मुसलिम संस्कार भी आ गये थे। कबीर साहेब पर इन दोनों संस्कारों का प्रभाव पड़ा होगा। समसामयिक नाथपंथियों के फैले हुए विचारों का भी प्रभाव पड़ा होगा और उपलब्ध साहित्य, संत तथा महापुरुषों से भी सारग्रहण करना सहज मानव का स्वभाव है। कबीर साहेब जैसे अत्यंत संवेदनशील पुरुष इसके अपवाद कैसे हो सकते हैं।

यह सब होते हुए भी, कबीर साहेब पर दृष्टि डालने से पुनर्जन्म-सिद्धांतानुसार लगता है कि वे अनेक जन्मों के दिव्य संस्कारी पुरुष थे। उनकी विशाल प्रतिभा एवं आध्यात्मिकता को देखकर उन्हें कोई प्रहलाद का अवतार, कोई ध्रुव का अवतार, कोई शुकदेव का अवतार तथा कोई ब्रह्म का अवतार ही घोषित कर दिया। उनकी बुद्धि छुराधार के समान तेज थी। इसी प्रकार उनका हृदय भी अत्यंत विशाल था; जिसमें पूरी मानवता को स्थान तो था ही, जीव मात्र के लिए करुणा थी।

कबीर साहेब पर पुराकाल से लिखे गये साहित्य के आधार पर पता लगता है कि वे अपनी छोटी उम्र से ही मानवता के प्रति अन्याय करने वाली रूढ़िवादी व्यवस्था का विरोध करने लगे थे। समाज, धर्म और ईश्वर या सत्य के प्रति उनके विचार, रूढ़िवाद से हटकर वैज्ञानिक थे। यद्यपि यह सब उनमें धीरे-धीरे परिपक्व हुए होंगे, तथापि इनके अंकुर उनमें शुरू से उग गये

थे और उत्तरोत्तर विकसित होते गये। श्री गरीबदास जी साहेब लिखते हैं—

पांच बरस के जब भये, कासी माँझ कबीर।
गरीबदास अजब कला, ज्ञान ध्यान गुन सीर ॥

अर्थात जब काशी में कबीर साहेब पांच वर्ष की उम्र के हुए तभी से उनमें आश्चर्यमय कला देखने में आयी और वे ज्ञान, ध्यान और गुणों में सिरमुकुट हो गये।

उक्त कथन में अतिशयोक्ति है, परन्तु इतना सच है कि वे तीव्र संस्कारी तथा अत्यंत संवेदनशील पुरुष थे; अतएव सृष्टि, साहित्य, सत्संग आदि से उनका ज्ञान भंडार छुटपन से ही उत्तरोतर बढ़ता जा रहा था। समसामयिक संतों एवं गुरुजनों से उनको बहुत बड़ी प्रेरणा मिली होगी। उन्होंने लोगों की अच्छाइयों से ही नहीं, गल्तियों से भी शिक्षा ली होगी।

बात यह आती है कि उन्होंने अपना गुरु किसी को चुना था कि नहीं ? इसके उत्तर में प्रायः स्वामी रामानन्द का नाम लिया जाता है। कुछ विद्वान स्वामी रामानन्द का काल कबीर के पहले मानते हैं और वे कहते हैं कि स्वामी रामानन्द कबीर के जन्म के पहले ही बीत गये थे और इस प्रकार दोनों से भेंट ही नहीं हुई। परन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार स्वामी रामानन्द और कबीर साहेब से भेंट हुई थी।

कबीर के नाम से प्रचलित अन्य वाणियों में राम शब्द का आदर तो है ही; उनके प्रामाणिक एवं तार्किक ग्रंथ बीजक में भी राम शब्द की भरमार है। उन्होंने दाशरथी राम[1] को अवश्य इष्ट नहीं माना है, परन्तु हृदय-निवासी चेतन तत्व को राम कहकर उसमें रमने का उपदेश दिया है।

मूल वेदों तथा वैदिक साहित्य—ब्राह्मण, आरण्यक, सूत्र ग्रंथों एवं वैदिक छह शास्त्रों में उपासनीय मानकर राम-नाम की चर्चा नहीं है। ईश, केन, कठ,

---

1. **दसरथ सुत तिहुँ लोकहि जाना। राम नाम का मरम है आना ॥**
आपुहि बाउर आपु सयाना। हृदया बसे तेहि राम न जाना ॥
(बीजक शब्द 109, रमैनी 41).

प्रश्न आदि दस-बारह प्रामाणिक उपनिषदों में जिनके शंकराचार्यादि आचार्यों ने भाष्य किये हैं, कहीं भी राम-नाम की चर्चा नहीं है। और तो और, बाल्मीकीय रामायण में जहाँ आदि रामकथा है, राम-नाम जपने की चर्चा नहीं है और न तो राम को उपासनीय माना गया है। ये तो ईसा की बारहवीं शताब्दी के बाद से दाशरथी राम को ईश्वर मानने का जोर पकड़ने लगा और यह बात साहित्य में बहुतायत से आने लगी, तब आध्यात्मिक चिंतकों को खटकने लगा कि किसी व्यक्ति विशेष को उपासनीय ब्रह्म कैसे माना जाय ! परन्तु जनमानस में राम शब्द की महिमा बहुत बढ़ गयी थी ! अतएव आत्मवादी, जीववादी एवं स्वस्वरूप-निष्ठ पुरुषों द्वारा राम शब्द का आत्मीयकरण कर लिया गया। कबीर साहेब का पहल इसमें प्रमुखता से है। हो सकता है कबीर साहेब ने स्वामी रामानंद को गुरु रूप में स्वीकारा हो। स्वामी रामानन्द दाशरथी राम को परमात्मा मानकर उनका नाम-जप तथा उनकी मूर्ति का पूजन आदि करते थे। यह सब कबीर साहेब को जंचा नहीं; अतएव राम शब्द को आदर देते हुए भी उसका अर्थ उन्होंने अंतरात्मा किया। यह सब कहने का अर्थ है कि कबीर साहेब की वाणियों में अध्यात्म के रूप में राम शब्द का प्रयोग अधिक होने से संभव है कि उनका सम्बन्ध स्वामी रामानन्द से रहा हो।

स्वामी रामानन्द अन्य आचार्यों की अपेक्षा उदार थे। यदि वे कबीर के काल में रहे हों, तो कबीर साहेब-द्वारा उनको गुरु मानने की बात संभव है। बीजक से भी यह प्रमाणित होता है कि स्वामी रामानन्द कबीर साहेब के काल में थे।

दो विचारकों के अध्यात्म के सारे तत्व सर्वथा अलग-अलग नहीं होते। दो भिन्न विचारकों एवं सन्तों की विचार-सरणी में कहीं-कहीं अन्तर होता है और इन अन्तरों को लेकर एक से दूसरे को बिलकुल अलग नहीं किया जा सकता। इसमें दो राय नहीं, कि स्वामी रामानन्द और कबीर साहेब के विचारों में शुरू से ही अन्तर रहा होगा। यह भी सर्वमान्य सिद्धान्त है कि कबीर साहेब स्वयं पूर्ण ज्ञानी एवं विवेकसम्पन्न पुरुष थे। उन्होंने केवल लोक-मर्यादा के लिए रामानन्द को गुरु रूप में स्वीकारा होगा।

मूर्तिपूजा, अवतारवाद एवं छूआछूत न मानने वाले कबीर साहेब की संगति स्वामी रामानन्द से कैसे बैठती होगी, क्योंकि वे यह सब मानते थे। किन्तु गुरु पद की भूरि-भूरि प्रशंसा करने वाले कबीर साहेब स्वामी रामानन्द को अवश्य आदर देते रहे होंगे।

ईसा की बीसवीं सदी की शुरुआत में पादरी अहमद शाह ने पूरे बीजक का इंगलिश में अनुवाद किया है।[2] उसकी भूमिका में आपने लिखा है कि रामानन्द का प्रभाव उतना कबीर पर नहीं किन्तु कबीर का प्रभाव रामानन्द पर था।

The story of Kabir's initiation has been told elsewhere, but there is every reason to suppose that Raman and was largely influenced by Kabir. Strictly orthodox in his observance of caste rules, he is said never to have spoken to a non-Brahman except through an intervening screen. But after his acceptance of Kabir we find a Rajput, a Chamar, a butcher, a prostitute, admitted to the status of disciple. The Ramanand Gasht gives many instances, not all necessarily historical, of the strong influence exercised by Kabir over his master Ramanand.

अर्थात्—कबीर की दीक्षा की कहानी और कहीं बताई जा चुकी है; परन्तु हर तर्क से यह निस्सन्देह माननीय है कि रामानन्द कबीर से अत्यधिक प्रभावित थे। वे जाति प्रथा को आचरण में लाने में पूरी तरह रूढ़िवादी थे और कहा जाता है कि उन्होंने अब्राह्मण के साथ बीच में बिना परदा रखे हुए कभी भी बात नहीं की होगी। परन्तु कबीर को स्वीकार कर लेने के बाद पाया जाता है कि उनकी शिष्य शाखा में एक राजपूत, एक चमार, एक कसाई

---

2. The Bijak of Kabir : By Ahmad Shah, P. 32. Asian Publication services, 243 Defence Colony flyover market, New Delhi 110024.

और एक वेश्या को भी स्थान मिल गया था। रामानन्द गस्ट ने कई उद्धरण दिये हैं जो निश्चित रूप से ऐतिहासिक तो नहीं हैं; किन्तु उनसे पता लगता है कि कबीर ने अपने गुरु रामानन्द पर ठोस प्रभाव छोड़ा था।

कबीर साहेब अपने विचार और प्रयोग के द्वारा स्वामी रामानन्द को सत्य की तरफ प्रेरित करते रहे होंगे। एक कहानी प्रचलित है कि स्वामी रामानन्द ने कबीर साहेब से कहा कि जाकर कहीं से गाय का दूध ले आओ, भगवान को भोग लगाना है। कबीर साहेब लोटा लेकर चल दिये। कबीर साहेब बारम्बार सोच रहे थे कि स्वामी जी जिस भगवान (मूर्ति) को दूध पिलाने का उपक्रम करते हैं, वह दूध पीने की क्षमता तो रखता नहीं; फिर भी स्वामी जी इस भ्रांति से अलग नहीं होते। चलो, आज उन्हें प्रायोगिक सुझाव देना है। कबीर साहेब ने देखा कि एक मैदान में मरी हुई गाय का कंकाल पड़ा है। उन्होंने उसके मुख के सामने कुछ घास रखी और लोटा लेकर बैठ गये तथा उससे कहने लगे—माता उठो, घास खाओ और मुझे दूध दो। यह करते-करते घंटों बीत गये।

स्वामी रामानन्द ने एक दूसरे शिष्य को कबीर का पता लगाने को भेजा। उसने आकर कबीर साहेब की क्रिया देखी और दंग रह गया। उसने जाकर स्वामी रामानन्द से यह बात कह सुनायी। स्वामी रामानन्द ने खड़ाऊँ पहनी और जहाँ कबीर साहेब थे चल दिये। उन्होंने जाकर कहा—कबीर, क्या यह मरी हुई गाय कभी घास खा सकती या दूध दे सकती है? तुम क्यों इसके पीछे पागल हो?

कबीर साहेब ने कहा—गुरु महाराज! अगर पत्थर का भगवान दूध पी सकता है तो मरी गाय का कंकाल दूध दे सकता है। कबीर साहेब का उत्तर पाकर स्वामी रामानन्द निरुत्तर रह गये।

कबीर साहेब ने स्वामी रामानन्द को बारम्बार सुझाव दिया—

राम गुण न्यारो न्यारो न्यारो।
अबुझा लोग कहाँ लो बूझै, बूझनहार विचारो।

केतेहि रामचन्द्र तपसी से, जिन्ह यह जग बिटमाया ।
केतेहि कान्ह भये मुरलीधर, तिन्ह भी अन्त न पाया ।।

(बीजक, शब्द 18)

रामहि राम पुकारते, जिभ्या परिगौ रौंस ।
सूधा जल पीवै नहीं, खोद पियन की हौंस ।।

(बीजक, रमैनी-साखी 33)

आपुहि बाउर आप सयाना । हृदया बसे तेहि राम न जाना ।।

(बीजक, रमैनी 41)

कबीर साहेब ने जब दाशरथी राम एवं बाह्य कल्पित राम से हटकर बारम्बार अन्तरात्मा की तरफ सुझाव दिया और कहा कि यह चेतन स्व-स्वरूप ही राम है, और स्वामी रामानन्द जब इस सुझाव पर नहीं टिक सके, तब कबीर साहेब ने कहा—

रामानन्द रामरस माते, कहहिं कबीर हम कहि कहि थाके ।।

(बीजक, शब्द 77)

अर्थात् स्वामी रामानन्द दाशरथी एवं कल्पित रामरस में माते रह गये, मैं उन्हें कह-कहकर थक गया, परन्तु वे उससे हटकर अन्तरात्मा की तरफ नहीं लौटे ।

स्वामी रामानन्द और कबीर साहेब के सिद्धान्तों का अन्तर स्पष्ट है, और बीजक के उक्त प्रामाणिक उद्धरण से यह सिद्ध होता है कि दोनों समसामयिक थे और यह भी सच हो सकता है कि कबीर साहेब ने गुरु-मर्यादा के लिए स्वामी रामानन्द को गुरु रूप में स्वीकारा हो ।

नाभादास जी के भक्तमाल में स्वामी रामानन्द के सम्बन्ध में एक छप्पय है । उसमें उनके शिष्यों में कबीर साहेब का नाम लिया गया है[3] तथा अनन्त

---

3. **श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दितिय सेतु जग तरन कियो ।**
अनन्तानन्द कबीर सुखा सुरसरा पदमावति नरहरि ।
पीपा भावानन्द रैदास धना सेन सुरसर की घर हरि ।।

दास की परिचई में भी ।[4]

कबीर साहेब के समसामयिक निर्वाण साहेब, जो सूरत (गुजरात) के प्रसिद्ध वैष्णव संत थे और जिन्होंने अपने यहाँ कबीर साहेब को बुलाकर सत्संग किया तथा कबीर साहेब को गुरु माना था, उन्होंने भी अपनी वाणी के एक शब्द में लिखा है कि कबीर साहेब रामानन्द को गुरु मानकर काशी में आसन लगाये हैं। यथा—

रामानन्द गुरु सिर पे धार के, काशी डेरा लगायो।

सारांश यह कि कबीर साहेब ने स्वामी रामानन्द को अपना मर्यादा का गुरु चुना था; तथ्यतः विवेक ही उनका गुरु था।

कबीर साहेब ने बीजक में स्वयं कहा है—या तो गुरु सब बंधनों को परखाकर उनसे छूटने की प्रेरणा दे या व्यक्ति स्वयं अपने विवेक से बंधनों को परखकर उन्हें छोड़ दे।

बहु बन्धन से बांधिया, एक बिचारा जीव।
की बल छूटै आपने, कीरे छुड़ावै पीव।

(बीजक, साखी-211)

श्री रामरहस साहेब ने अपने महान ग्रंथ पंचग्रंथी में कबीर साहेब को "साहेब स्वतः प्रकाश पारख" कहा है। उन्होंने कबीर साहेब की ओर संकेत कर कहा है—

देखि अनेक रीति अकुलाना। निज शोधन तब कियो सुजाना।।
सत्य विचार धीरता पाई। दया शील उर बसो सहाई।।

और शिष्य प्रशिष्य एक तें एक उजागर।
विश्व मंगल आधार सर्वानन्द दशधा के आगर।।
बहुत काल बपु धारि के प्रनत जनन को पार दियो।
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो।।

(नाभादास भक्तमाल, छप्पय 31)

4. रामानन्द को सिष है कबीरा ताको सन्त।
भगति दृढ़ावन औतर्‌यो गावैं दास अनन्त।।

प्रेम गोहार स्वतः पद देखा। इन्हके लहत सब मिटै अलेखा ।।
ठहरि यथारथ पारख कीन्हा। लहत प्रकाश स्वतः पद चीन्हा ।।
स्वतः दृष्टि जब जेहिं भई भाई। सोई गुरुपद ठहर परखाई ।।
पारख में ठहरे बुद्धिवन्ता। देखि दशा निज नाहिन हन्ता ।।
मन माया कृत जे जे जाला। जीवहि दृष्टि निज दीन दयाला ।।
ताते नाम दयाल कहाये। जीवहि निज पद आप लखाये ।।
लखै बचन ताके जो जीऊ। सो गुरु सो शिष्य साधु सो पीऊ ।।
हंसन नाह साहेब गुरु देवा। बन्दीछोर काल को भेवा ।।

(पंचग्रन्थी, गुरुबोध, प्रश्नोत्तर 7)

उक्त चौपाइयों में श्री रामरहस साहेब अपना भाव व्यक्त करते हैं कि कबीर साहेब मत-मजहबों की अनेक रीतियों को देखकर व्याकुल हो गये और उन्होंने सबसे उपराम होकर अपने स्वरूप का शोधन किया। सत्य, विचार, धैर्य, दया, शील आदि शुभगुणों के आचरण से उनका हृदय शुद्ध हो गया और उनकी अंतरात्मा की प्रेम-पुकार से उनके हृदय के पट खुल गये और उन्होंने स्वस्वरूप का साक्षात्कार कर लिया। स्वरूपज्ञान होते ही उनकी अगणित भ्रांतियाँ मिट गयीं। जब उन्होंने स्थिर होकर यथार्थ परख की कसौटी से समाज, धर्म एवं अध्यात्म की परीक्षा की तब उनके हृदय में ज्ञान-प्रकाश हो गया और उन्होंने अपने आत्मस्वरूप को पहिचान लिया। हे भाई, जब उनकी स्वतः स्वरूपज्ञान की दृष्टि हो गयी तब वे अपने गुरुपद एवं स्वस्वरूप में स्थित होकर दूसरे जिज्ञासुओं को सारासार परखाने लगे। वे विवेकवान अपने पारख में ठहर गये। जिन्होंने अपनी स्वरूपस्थिति की दशा का प्रत्यक्ष कर लिया है उसको किसी भौतिक वस्तु का अहंकार नहीं होता। दीनदयाल सद्गुरु कबीर ने मन-माया के जितने जाल हैं, जीवों को परखाये। उन्होंने जीवों को उनके अपने स्वरूप का ज्ञान दिया, इसलिए वे दीनदयाल कहलाये। जो जीव उनके वचनों पर ध्यान देता है, वही शिष्य है, वही साधु है, वही गुरु है और वही अपने आप का स्वामी है। बन्दीछोर सद्गुरु कबीर साहेब सभी कल्पनाओं के भेद को जानते हैं, इसलिए वे हंसों के, संतों के स्वामी हैं।

उक्त प्रसंग और लम्बा गया है तथा पंचग्रन्थी में इसे कई जगह कहा गया है। कबीर साहेब ने अपनी स्वतः एवं स्वतन्त्र दृष्टि से मंथन करके बीजक की वाणियाँ कही हैं।

सारांश

कबीर साहेब ने स्वामी रामानन्द को मर्यादा के लिए गुरु माना हो, तो इसमें आश्चर्य नहीं है, और कई प्रमाणों से यह सिद्ध भी होता है। किन्तु उनका सच्चा गुरु उनका विवेक था, यह भी परम सत्य है तथा प्रायः सभी संत एवं विद्वान भी इसका समर्थन करते हैं।

तीसरा अध्याय : चमत्कार एवं अलौकिकता

संसार के प्राय: सभी धार्मिक महापुरुषों के लिए उनके भक्तों ने चमत्कार एवं अलौकिकता का वर्णन किया है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, नानक—सभी गहन चमत्कार के दलदल में डुबो दिये गये हैं। इसलिए उनके वास्तविक चेहरे संसार के सामने से गायब हो गये हैं। ऋग्वेद (8/85/13-16) के अनुसार श्रीकृष्ण वन्य जातियों के नायक, ब्राह्मणों के हिंसायुक्त कर्मकाण्ड के विरोधी तथा आर्यकुल श्रेष्ठ इन्द्र के शत्रु हैं; छांदोग्य उपनिषद् (3/17/6) के अनुसार घोर अंगिरस के शिष्य तथा आध्यात्मिक ज्ञान के जिज्ञासु एवं मुमुक्षु हैं; और कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास-रचित लगभग आठ हजार श्लोकों के मूल एवं संक्षिप्त 'जय'[1] नाम के काव्य के अनुसार श्री कृष्ण शूर-वीर, राजनेता एवं नीतिनिपुण महापुरुष हैं। पीछे जब कवियों को महाराज श्री कृष्ण को परब्रह्म बनाने की सूझी, तब महाभारत में प्रक्षेप बढ़ते गये और श्री कृष्ण जी को परमात्मा बनाकर उनमें अनेकश: चमत्कार जोड़े गये। गीता भी इसमें पीछे का प्रक्षेप है।

ऋग्वेद (10/93/14) के अनुसार दु:शीम, पृथवान और वेन के साथ असुर (बली) राम की चर्चा आती है 'प्ररामे वोचमसुरे'। 'असु' कहते हैं प्राण को, 'असुर' कहते हैं प्राणवान एवं बलवान को। यहाँ अन्य तीन राजाओं के साथ बली राम की चर्चा है। परन्तु यह चर्चा नहीं है कि यह राम कौन हैं।

1. **कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने साढ़े आठ हजार श्लोकों में कौरव-पाण्डव की युद्ध-कहानी पहले पहल लिखी थी। उसका नाम था 'जय'। उसके बाद वैशंपायन ने उसे बढ़ाकर लगभग पचीस हजार श्लोकों में किया। इसका नाम 'भारत' हो गया। और जब इसे 'सौति' ने लगभग एक लाख श्लोकों में पहुँचा दिया, तब इसका नाम महाभारत हुआ। वैसे महाभारत में कई पण्डितों के प्रक्षेप होते रहे।**

इसके बाद वेदों, वैदिक साहित्य तथा शास्त्रों में कहीं भी राम की चर्चा नहीं है। रामकथा विशेषज्ञों[2] के अनुसार ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में वाल्मीकि द्वारा लगभग (3) हजार श्लोकों में रामकथा नर-कथा के रूप में बनी जिसका नाम 'पौलस्त्य वध[3]' था। इस संक्षिप्त संस्करण में श्री राम केवल एक उच्च मानव थे। पीछे प्रक्षेप बढ़े तथा ईसा पूर्व दूसरी तथा पहली शताब्दी के बीच श्रीराम आदि चारों भाइयों को विष्णु के अंशावतार रूप में चित्रित किया गया। इसके बाद सैकड़ों वर्षों तक बाल्मीकीय रामायण में सामग्री पड़ती रही। ईसा के एक हजार वर्ष बाद श्रीराम को अनन्त ब्रह्माण्डनायक परब्रह्म परमात्मा चित्रित किया जाने लगा। पहले पहल ईसा की तेरहवीं शताब्दी के लगभग श्रीराम शर्मा[4] नाम के एक पण्डित द्वारा अध्यात्म रामायण लिखकर उसमें राम को व्यवस्थित ढंग से परब्रह्म निरूपित किया गया। इसके बाद सोलहवीं शताब्दी में हिन्दी कविकुल भूषण गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीराम को अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक, युग-युग में या हर त्रेता में अवतार लेने वाला घोषित किया। ईसा ईश्वर के पुत्र, मुहम्मद ईश्वर के संदेश वाहक, बुद्ध तथा महावीर अनन्त ब्रह्मांड को स्तंभित करने वाले, शंकराचार्य शिव के अवतार तथा नानक अकाल पुरुष-द्वारा भेजे गये सर्वोपरि पुरुष—अपने-अपने अनुयायियों द्वारा बनाये गये।

कबीर साहेब एक महान सन्त थे। वे प्रायः सभी मतों-द्वारा सन्त-शिरोमणि के रूप में स्वीकृत हैं। कबीर साहेब अपनी प्रखर प्रतिभा, अप्रतिम त्याग, अद्भुत व्यक्तित्व, पूर्ण निष्पक्षता तथा स्पष्टवादिता के कारण अद्वितीय पुरुष

---

2. फादर कामिल बुल्के : रामकथा, प्रयाग विश्वविद्यालय प्रकाशन, इलाहाबाद तथा रामानन्द संप्रदाय के परम वैष्णव विद्वान सन्त स्वामी भगवदाचार्य, लेखरत्न मंजूषा भाग 7 पृ० 378।
3, पुलस्त्य के नाती॰रावण का वध—पौलस्त्य वध।
4. स्वामी भगवदाचार्य, लेखरत्न मंजूषा, भाग 7, पृ० 164-165। तथा फादर कामिल बुल्के की रामकथा।

हो गये हैं । वे स्वयं अवतारवाद, चमत्कार एवं अलौकिकता के विरुद्ध थे। परन्तु उनके प्रशंसक-भक्त श्रद्धा-विह्वलतावश अपने को न रोक सके और वे कबीर साहेब के सिद्धान्तों के विरुद्ध अवतारवाद और चमत्कार के दलदल में फंसने लगे । कबीर साहेब को अवतार बना देने के बाद उनके द्वारा कुछ भी किये जाने का चित्रण करना सरल हो गया । सैकड़ों ग्रन्थों में कबीर साहेब के चमत्कारों का वर्णन है । वह सब यहाँ देना न सम्भव है और न आवश्यक। किन्तु उनमें से कुछ का वर्णन कर देना प्रासंगिक होगा जिससे नये पाठक यह समझ सकें कि कबीर साहेब जैसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाले खरे सन्त के प्रति भी उनके कुछ भक्तों की मानसिकता क्या है । कोई सन्त या महापुरुष अपने मानवता, सत्यवादिता, सदाचार, सच्चे ज्ञान एवं पवित्र रहनी के कारण महान होते हैं, ऐसी बातें कम लोग समझ पाते हैं । किन्तु उनके पीछे यह धारणा लगा दी जाय कि वे अवतार हैं तथा वे अपने आशीर्वाद से जड़ को चेतन तथा चेतन को जड़ और मुर्दे को जिन्दा कर सकते हैं और जब जो कुछ करना चाहें कर सकते हैं, तब आम लोग उनकी महत्ता समझते हैं । और यहीं से सारी बुराइयाँ पैदा होती हैं । परन्तु इसका मोह कोई विरला व्यक्ति एवं मत छोड़ पाता है । धार्मिक क्षेत्र की यह खास कमजोरी है ।

कबीर और गोरख सम्मिलन

एक बार कबीर साहेब काशी में एक टूटी चौकी पर बैठे थे । गोरखनाथ कबीर साहेब को परास्त करने की इच्छा से उनके पास सिंह पर बैठे हुए आ पहुँचे । कबीर साहेब ने देखा कि गोरख जी अहंकारपूर्वक सिंह पर बैठे हुए आ रहे हैं । उन्होंने जिस चौकी पर बैठे थे, उससे कहा "चल चौकी, गोरखनाथ की अगवानी कर !" टूटी चौकी गोरखनाथ की ओर चल पड़ी । गोरखनाथ चकित हो गये । उन्होंने सोचा कि जिसकी आज्ञा से टूटी चौकी भी चलती है, उससे मैं क्या बात करूँगा ।

कबीर साहेब गोरखनाथ के मन की बात जान गये और उन्होंने कहा—गोरख जी ! आइए चर्चा हो जाय । गोरखनाथ ने चालीस (40) हाथ लम्बा

एक त्रिशूल ले रखा था। उसे उन्होंने जमीन में गाड़ दिया और उसकी नोक पर जाकर आसन लगा लिया, और कहा—कबीर जी ! यहाँ आकर सत्संग करें।

कबीर साहेब ने एक सूत आकाश में फेंका; वह असी (80) हाथ ऊँचा जाकर रुका; और वे सूत के ऊपरी सिरे पर जाकर आसन लगाकर बैठ गये और गोरखनाथ से उन्होंने कहा कि यहाँ आकर सत्संग करें। गोरखनाथ कबीर साहेब का चमत्कार देखकर स्तंभित रह गये। परन्तु उनका मन थका नहीं। गोरखनाथ ने कबीर साहेब से कहा कि मैं पानी में डूबता हूँ, आप मेरा पता लगावें। वे मेढक बनकर पानी में छिप गये। कबीर साहेब अपना हाथ लम्बा बनाकर गोरख को पकड़ लिये। तब कबीर साहेब ने कहा कि हे गोरखनाथ, अब आप मेरी खोज करें। ऐसा कहकर कबीर साहेब पानी में डुबकी लगा-कर पानी रूप बन गये। गोरखनाथ कबीर साहेब को नहीं खोज सके और अन्त में हारकर अपने आश्रम पर चले गये।

कबीर साहेब से शताब्दियों पूर्व गोरखनाथ जी का काल है। परन्तु हर दो महापुरुषों को मिलाकर अपने श्रद्धेय को दूसरे महापुरुष से बड़ा सिद्ध करना भक्त-लेखकों का स्वभाव रहा है। इसीलिए श्री राम से पीढ़ियों पहले होने वाले अगस्त्य जी को श्री राम से जोड़ा गया। गोस्वामी जी ने तो भरद्वाज, याज्ञवल्क्य, नारद, वसिष्ठ आदि ऋषियों को श्रीराम के सामने झुकाया है। बौद्धों-जैनों ने इन्द्रादि समस्त देवताओं को बुद्ध तथा महावीर के सामने झुकाया है।

कबीर पर सिकन्दर लोदी की कसौटी

कहा जाता है कबीर साहेब के खरे ज्ञान को पाकर हिन्दू-मुसलमान वर्ग के बहुत-से लोग उनके साथ हो गये और उनके आन्दोलन का प्रभाव जन-जन में पड़ने लगा। कबीर साहेब ऐसी सभी बातों को पाखण्ड मानते थे जिनसे

3

मानव-मानव के बीच में कोई फरक पड़े। हिन्दू-मुसलमान के नेता पण्डित और मुल्ला सदैव विभाजक रेखा की बात करते थे। इन मुल्ला-पण्डितों की कृपा से आस्तिक-नास्तिक, दीनदार-काफिर, ऊँच-नीच, छूआछूत आदि का घोर पाखण्ड फैला था। सभी मतवादी अपने मत को मोक्ष का द्वार समझते थे और दूसरे मत को नरक का द्वार। कबीर साहेब को इन बातों से बहुत चिढ़ थी। वे समाज की एकता को तोड़ने वाले तत्वों को अच्छी तरह फटकारते थे। उनकी सत्य से भरी चुटीली बातों से जनता प्रभावित हो रही थी। इसलिए मुल्ला और पण्डित दोनों घबरा उठे। उन दोनों ने समसामयिक दिल्लीपति बादशाह सिकन्दर लोदी से कबीर साहेब की उस समय शिकायत की जब वह जौनपुर आया था, जो काशी के निकट है।

कहा जाता है कि सिकन्दर लोदी ने कबीर साहेब को मरवाने के लिए उन्मत्त हाथी छोड़वाया। परन्तु हाथी को कबीर साहेब के दोनों ओर सिंह दिखायी दिये और हाथी चिंघाड़ मारते भाग खड़ा हुआ।

हाथी जब भाग खड़ा हुआ तब कबीर साहेब को जंजीर से बाँधकर तथा गले में एक वजनदार जंजीर डालकर गंगा में फेंक दिया गया। किन्तु जंजीर अपने आप टूटकर बिखर गयी और उसके बदले फूल की एक सुन्दर शय्या पर कबीर साहेब गंगा की धारा पर पल्थी मारकर बैठ गये। हजारों का समाज यह चमत्कार देखकर स्तंभित रह गया।

इसके बाद कबीर साहेब को खौलते हुए तेल-कटाह में डाल दिया गया; किन्तु वह उबलता तेल जल की तरह शीतल हो गया और कबीर साहेब का बाल भी बांका नहीं हुआ।

जब ये सब उपाय निष्फल गये, तब कबीर साहेब के शरीर के सभी अंग तलवार से काटकर एक पात्र में पका दिये गये और उनका पूरा शरीर पका हुआ मांस हो गया। परन्तु बादशाह क्या देखता है कि उसके सिंहासन पर कबीर साहेब पल्थी मारकर बैठे हैं। राजा तथा पूरा समाज दंग रह गया।

इसके बाद कबीर साहेब को कूएं में गिराकर बालू से पाटा जाने लगा। लोगों ने आकर कहा किसे पाटते हो, कबीर तो राज-सभा में सिंहासन पर बैठे हैं।

फिर सूखी लकड़ी इकट्ठी कर और उसमें कबीर साहेब को बैठाकर आग लगा दी गयी, परन्तु सबको आश्चर्य हुआ कि कबीर साहेब राज-सभा में रत्नजटित सिंहासन पर बैठे उपदेश कर रहे हैं।

फिर कबीर साहेब को तलवार से मारने की चेष्टा की गयी, किन्तु तलवार की धार से कबीर साहेब के गले या देह में कहीं खरोंच तक नहीं आयी। जैसे हवा में तलवार भांजने से इधर से उधर निकल जाती है और आकाश में कोई चिन्ह नहीं बनता, वैसे कबीर साहेब के शरीर पर जब तलवार पड़ती थी, तब वह इधर से उधर निकल जाती थी और शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। क्योंकि उनका शरीर पंच भौतिक तो था नहीं, वह तो चिन्मय दिव्य था।

फिर और उपाय सोचा गया। कबीर साहेब को मैदान में खड़ाकर तोप से दाग देने का उपक्रम किया गया। किन्तु न गोला-बारूद उसमें से निकले और न कबीर साहेब का एक बाल भी बांका हुआ।

झूंसी (प्रयाग के पूर्व) गंगा तट पर कबीर साहेब खड़े थे तथा सिकन्दर लोदी के गुरु शेखतकी भी। एक बालक की लाश बही जा रही थी। शेखतकी के कहने पर कबीर साहेब ने उसे पुकारा और वह जीकर उनके पास आ गया। एक दिन शेखतकी की एक लड़की मर गयी। उनकी प्रार्थना पर कबीर साहेब ने उसे भी जिला दिया।

तत्व-जीवा तथा पाटन प्रसंग

कबीर साहेब गुजरात गये थे। गुजरात में वे पाटन पहुँचे। पाटन राजा का बाग किसी महात्मा के शाप से सूखा था। कबीर साहेब जब उस बाग में पहुँचे, तुरन्त सारे पेड़ हरे हो गये और फूल-फल से लद गये।

गुजरात के भड़ोच जिले में नर्मदा नदी के पश्चिम शुक्ल तीर्थ है और नदी के पूर्व वहीं तत्वा एवं जीवा नाम के दो ब्राह्मण-बन्धु रहते थे। उनके यहाँ एक बरगद का सूखा पेड़ था। उन दोनों ब्राह्मण-वन्धुओं की प्रतिज्ञा थी कि जिन सन्त के चरण-जल से यह सूखा वटवृक्ष हरा हो जायेगा, उन्हें ही हम अपना सद्गुरु मानेंगे।

जब कबीर साहेब उनके यहाँ पहुँचे और उन्होंने कबीर साहेब का चरण-जल उसमें छोड़ा तब सूखा पेड़ हरा हो गया।[1]

तोताद्रि में कबीर साहेब

भारत के दक्षिण दिशा में तोताद्रि नाम की एक जगह है। वहाँ रामानुज सम्प्रदाय के आचारी महात्मा-पंडित रहते थे। कबीर साहेब प्रचार में अपनी संत-मंडली-सहित वहां पधारे थे। भोजन पक चुका था। आचारी महात्मा पंडित इस चक्कर में थे कि कबीर की संत-मंडली के साथ हम लोग बैठकर भोजन कैसे करें। क्योंकि कबीर तथा उनकी संत-मंडली की जाति-पाँति का ठिकाना नहीं। बहुत सोचने-विचारने के बाद उन आचारी महात्मा-पंडितों ने एक युक्ति निकाली कि इस पंगत में वही बैठ सकता है जो सस्वर वेद-मन्त्र

---

1. **दीन दरवेश ने कहा है—**

सन्त कबीर दयानिधि, रेवा के तीर आय।
गोसैंया की पीर को, साहिब दिये मिटाय॥
साहिब दिये मिटाय, सन्त महिमा अपारी।
सूके काठ जिवाय, सद्गुरु की बलिहारी॥
कहत दीन दरवेश, महातम कबीर वट ही को।
साहिब मेरा सलाम, कबीर गुरु दयानिधि को॥

(कबीर परम्परा : गुजरात से सन्दर्भ में, पृष्ठ 27)

का पाठ कर सके, और जो ऐसा न कर सके वह अलग बैठकर भोजन करे। उन लोगों ने सोचा कि कबीर तथा कबीर की मण्डली वेद का ज्ञान रखते नहीं अतः वे स्वतः हमारी पंगत से अलग हो जायेंगे।

कबीर साहेब ठहरे जगनियंता अंतर्यामी परमात्मा। अतः उन्होंने पंडितों के मन की सारी बातें जान ली और वहीं एक खड़े हुए भैंसे से कहा तुम सस्वर वेद-मन्त्रों का पाठ करो, और आश्चर्य कि वह पाठ करने लगा।

सभी पंडित कबीर साहेब के चमत्कार से प्रभावित होकर उनके चरणों में झुक गये और उनसे उन्होंने क्षमा मांगी।

कुछ काल के बाद स्वामी रामानंद जी तोताद्रि पधारे। उन आचारी महात्मा-पंडितों के सामने पुनः वही समस्या आयी कि स्वामी रामानंद की संत मण्डली में सभी जाति के लोग रहते हैं। अतएव इनके साथ हम लोग बैठकर भोजन कैसे करें।

उन आचारी महात्मा-पंडितों ने स्वामी रामानंद को बता दिया कि आप को अलग बैठकर भोजन करना पड़ेगा। स्वामी रामानंद जी अपनी संत-मंडली के साथ अलग बैठकर भोजन कर रहे थे और ग्लानि में डूबे थे। इतने में अन्तर्यामी सद्गुरु कबीर साहेब काशी से अंतर्धान होकर तोताद्रि में पहुँच गये और जहां पर आचारी महात्मा-पंडित जन भोजन कर रहे थे, वहाँ हर पंडित और महात्मा के बीच-बीच में कबीर साहेब दिखायी देने लगे। वे पंडित और महात्मा आश्चर्य में डूब गये तथा उनके अज्ञान के कपाट खुल गये, और सब मिलकर कबीर साहेब से क्षमा मांगने लगे। उन्होंने कबीर साहेब को उच्च आसन पर बैठाकर उनकी पूजा की तथा स्वामी रामानंद से भी उन्होंने क्षमा मांगी।

श्री हर्ष पांडेय के जलते पैर शीतल करना

कबीर साहेब एक समय काशीनरेश की राजसभा में रत्नजटित सिंहासन

पर बैठे थे । राजा वीरसिंह तथा महात्मा रविदास भी बैठे थे । इतने में कबीर साहेब ने अपने कमंडलु का जल अपने पैरों पर डाल लिया । वहाँ बिछा हुआ बिस्तर भीग गया । राजा ने कहा—महाराज, आपने अकारण अपने पैरों पर पानी क्यों डाला ?

कबीर साहेब ने कहा—उड़ीसा प्रदेश के जगन्नाथ धाम में श्री हर्ष पांडेय नाम के पुजारी का, भंडार घर में अभी पैर जल गया है । इसलिए मैंने अपने पैरों पर जल डालकर उसे बुझाया है । राजा ने जगन्नाथ धाम को अपना दूत भेजकर पता लगाया तो बात सच निकली ।

कबीर साहेब का भंडारा

कबीर साहेब की महिमा पूरे भारत में फैल गयी थी । काशी में तो वे जन-जन के प्रिय हो गये थे। परंतु हिन्दू-मुसलमान के कुछ पुरोहित उनकी महिमा से बहुत चिढ़े थे । कबीर साहेब के दिव्य ज्ञान एवं आचरण से वे लोग हतप्रभ थे। इसलिए उन्हें बदनाम करने के लिए उन्होंने एक नयी युक्ति निकाली ।

पुरोहित लोगों ने काशी के चारों ओर योजनों तक प्रचार कर दिया कि अगली अमुक तिथि को काशी में कबीर साहेब के आश्रम पर एक विशाल भंडारा है । वहाँ पर साधु तथा गृहस्थ सबके लिए आमंत्रण है । सबको भोजन एवं दक्षिणा मिलेगी।

दिन आने पर सुबह से ही कबीर साहेब के आश्रम पर हजारों की भीड़ आने लगी और देखते-देखते लाखों लोग इकट्ठे हो गये । कबीर साहेब के आश्रम में तो दो-चार सेर अन्न के अलावा कुछ नहीं था, परन्तु उन्होंने अपने चमत्कार के बल पर उन लाखों को उत्तमोत्तम भोजन कराया तथा वस्त्र-द्रव्य आदि दक्षिणा देकर बिदा किया ।

कुछ लोग कहते हैं कि कबीर साहेब तो भीड़ देखकर जंगल में भाग गये। परन्तु ईश्वर कबीर साहेब तथा एक सेठ के रूप धारणकर और स्वागत की समस्त सामग्री लाकर आगतों का स्वागत किये। खैर, कबीर साहेब ही जब ईश्वर थे, तब यह सब तो उनके बाँयें हाथ का खेल था।

समीक्षा

कबीर साहेब पर लगाये गये चमत्कारों तथा उन पर कही गयी महिमाओं का वर्णन यदि किया जाय, तो पुराण जैसा एक वृहद् आकार की पुस्तक बन जायेगी।

आप समझ सकते हैं कि चौकी किसी की आज्ञा से चल नहीं सकती। सूत के सिरे पर कोई बैठ नहीं सकता।

उन्मत्त हाथी से, गंगा में फेंकने से, खौलते तेल में डालने से, शरीर को काटकर पका देने से, कूयें में गिराकर बालू पाटने से, आग में डालने से, तलवार से काटने से, तोप से दागने आदि से भी कबीर साहेब का एक बाल बांका नहीं हुआ। इन असंभव कहानियों का अर्थ इतना ही है कि समसामयिक पुरोहित वर्ग तथा राज-व्यवस्था ने भी कबीर साहेब को कष्ट देने का प्रयत्न किया, किन्तु उन्हें सत्य के मार्ग से कोई एक तिल भी नहीं हटा सका। दुनिया में जितने क्रांतिकारी पुरुष हुए हैं, जैसे—बुद्ध, महावीर, ईसा, सुकरात, मंसूर आदि, सबको समसामयिक व्यवस्था ने कम-बेश कष्ट दिया है। कबीर साहेब तो इन सब में अधिक खरे धार्मिक पाखंडों के आलोचक ही नहीं, कटु आलोचक हुए हैं। संसार के प्राप्त इतिहास में पाखंडों की कटु आलोचना करने वाला कबीर-जैसा कोई नहीं हुआ है। फिर भी उनका कोई कुछ नहीं कर सका। ऐसी स्थिति में भक्त-कवि उन पर रीझकर उनके शरीर को अक्षय और उन्हें परमात्मा मान लें, तो आश्चर्य क्या है! परंतु यह सब हैं अतिशयोक्तियां ही।

संसार में कारण-कार्य की एक व्यवस्था है। विश्व के अपने शाश्वत नियम हैं। प्रकृति के अपने स्वभाव एवं विधान हैं। उसका उल्लंघन हजारों भगवान, ईश्वर, ब्रह्म एवं महात्मा मिलकर भी नहीं कर सकते। आग का स्वभाव है जलाना। चाहे उसमें दुष्ट पड़े या संत, लैला-मजनू की किताब हो या वेद-शास्त्र एवं धर्मग्रंथ, सभी जल जायेंगे। प्रायः हर मत के भक्तों ने अपने इष्ट एवं पूज्य पुरुषों के लिए चमत्कार की कहानियाँ गढ़ी हैं, जिनसे जनता का लाभ कम, हानि ज्यादा हुई है। प्रायः मतों द्वारा चमत्कारों के बल पर कुछ शिक्षित तथा अशिक्षितों को अंध श्रद्धालु बनाकर उन्हें धार्मिक बनाने का प्रयत्न किया गया है, परंतु मतों ने यह विचारने की कोशिश नहीं की कि चमत्कार असत्यता है और असत्यता अधर्म।

चौथा अध्याय : यात्रा एवं प्रचार

कबीर साहेब की उम्र जब पचीस-तीस वर्ष की थी, तभी वे उत्तरी भारत में चर्चा के विषय बन गये थे। उनकी उम्र जितनी बढ़ती गयी, उनके खरे ज्ञान तथा पवित्र आचरण से उनकी भारतवर्ष में गूँज होती गयी। उन्होंने अपना खास केन्द्र तो काशी अवश्य रखा, परन्तु वे जीवन-पर्यन्त भारत के कोने-कोने में तथा आस-पास के देशों में भी सत्य धर्म के प्रचार के लिए घूमते रहे।

कबीर साहेब ने 120 वर्ष की लम्बी आयु पायी थी। यदि उनके जीवन की गतिविधि, प्रचार-कार्य एवं यात्राओं का विवरण उनके काल में लिखा गया होता, तो वह मानव-समाज के लिए एक महान प्रेरणा का स्रोत होता। परन्तु जब किसी प्राचीन भारतीय महापुरुष के विषय में यह सब नहीं लिखा गया, तब कबीर साहेब जैसे मस्तमौला के लिए कैसे लिखा जाता। इससे उन महापुरुषों की महत्ता का पता अवश्य लगता है कि वे अपने माने हुए नाम, रूप एवं महिमा की इच्छा से बहुत दूर थे; परन्तु इतिहास तथा जनता के लिए यह अहितकर है।

यत्र-तत्र प्राप्त बाहरी सामग्री के आधार पर कुछ विद्वानों ने कबीर साहेब की कुछ यात्राओं का वर्णन किया है। गुजरात के डॉ० कांतिकुमार सी० भट्ट ने लिखा है कि गुजरात में शैव-वैष्णव एवं शाक्तों की खूनी लड़ाई हुई। इससे जनता में आतंक छा गया। वहाँ से एक कमेटी बनाकर उसके सदस्य काशी आये उन्होंने कबीर साहेब से निवेदन किया कि आप गुजरात चलने की कृपा करें। आपके एकतापरक विचार से ही वहाँ का धार्मिक कलह समाप्त हो सकता है।

कबीर साहेब काशी से अपनी संत मण्डली के साथ विचरण करते हुए महीनों में गुजरात पहुँचे। वे पाटन गये। इसी पाटन में पीछे प्रचार किया गया कि कबीर साहेब के आने से सूखा बाग हरा हो गया था।

पाटन के बाद भड़ौच जिले के शुक्ल तीर्थ के पास नर्मदा के पूर्व तरफ तत्वा-जीवा नाम के दो ब्राह्मण बन्धुओं के घर पर कबीर साहेब पधारे। कबीर साहेब के चरणोदक से वहाँ का सूखा वट-वृक्ष हरा हो गया। वस्तुतः वट-वृक्ष के भीतर उसकी जीवनी-शक्ति गुप्त रूप में रही होगी और जब कबीर साहेब का चरण-जल उसमें छोड़ा गया होगा तब उसके बाद से उसमें हरापन होने का संयोग आ गया होगा। यह वट-वृक्ष आज भी नर्मदा के पूर्व तट पर खड़ा है। इसका नाम 'कबीर-वड़' है। यह एक विशाल वृक्ष है तथा सरकार के संरक्षण में है। इसके नीचे कार्तिक पूर्णिमा को मेला लगता है। तत्वा-जीवा ब्राह्मण बन्धु कबीर साहेब के शिष्य हो गये थे।

सूरत में निर्वाण जी महाराज नाम के एक प्रसिद्ध वैष्णव सन्त थे, जो राजस्थान से आकर सूरत में आश्रम बना लिये थे। ये बड़े प्रसिद्ध और पहुँचे हुए सन्त थे। इन्होंने शुक्लतीर्थ में जाकर तत्वा-जीवा के यहाँ कबीर साहेब के दर्शन कर उन्हें अपने सूरत-आश्रम के लिए निमन्त्रित किया था। कबीर साहेब अनेक स्थलों पर होते हुए सूरत में निर्वाण जी महाराज के आश्रम पर पहुँचे थे। वहाँ पर कबीर साहेब के दर्शनार्थ वैष्णव सन्तों एवं भक्तों का बहुत बड़ा समाज इकट्ठा था। आश्रम में पधारने पर निर्वाण जी ने कबीर साहेब का बड़े गरमजोशी से स्वागत किया था। रात भर वे उनके सत्संग एवं स्वागत में लीन रहे। कहा जाता है कि कबीर साहेब का वहाँ लम्बा भाषण हुआ था। सुबह होने पर अपनी सन्त-मण्डली के साथ कबीर साहेब वहाँ से चलने लगे। चलते समय उन्होंने निर्वाण जी महाराज से कहा था—निर्वाण जी, आज से आपका नाम निर्वाण साहेब हो जायेगा। सचमुच में उन्हें लोग निर्वाण साहेव कहने लगे। आज भी सूरत में निर्वाण साहेब की समाधि बनी है और समाधि पर निर्वाण साहेब लिखा है।

कबीर साहेब के चले जाने पर वैष्णव सन्तों ने निर्वाण जी महाराज से कहा—महाराज ! हम लोगों को आश्चर्य होता है कि आप और हम सब वैष्णव हैं, सगुणवादी, अवतारवादी और मूर्तिपूजक हैं और कबीर साहेब

निर्गुणवादी सन्त हैं। वे न मूर्तिपूजन मानते हैं और न अवतार। आप उनके स्वागत तथा सत्संग में इतने लीन कैसे हो गये ?

निर्वाण जी महाराज ने वैष्णव सन्तों को उत्तर दिया—"हे सन्तो ! आप लोगों के दिल में यह आश्चर्य हुआ कि मैंने अपने आपको कबीर साहेब पर कैसे निछावर कर दिया ? निर्गुण के गीत गाने वाले कबीर को गुरु मानकर उनसे नाता कैसे जोड़ा जा सकता है क्योंकि हम लोग तो सगुण उपासक हैं हमें श्रीराम को अवतार मानकर उनसे प्यार है ? यह सगुण-निर्गुण का भेद कितना दुखदायी है। कबीर कोई मामूली सन्त नहीं हैं। वे सगुण-निर्गुण के भेद से परे हैं। वे युग-युग के योगी हैं। मैंने उनकी पहिचान की है कि वे पक्के अवधूत एवं विरक्त सन्त हैं। उन्होंने स्वामी रामानन्द को सिरमौर गुरु माना है और काशी में अपनी साधना एवं प्रचार का डेरा जमा रखा है। भेदभाव तथा चतुराई छोड़कर सन्तों से मेरी मित्रता है। मैं ऐसे सन्तों के चरण-कमलों को चाहता हूं कि उनके प्रेम में लिपटा रहूं। कबीर ज्ञान के सच्चे जौहरी-पारखी हैं और संसार के खुले बाजार एवं मैदान में खड़े हैं। वे पक्के अवधूत सन्त हैं और अभेद को उन्होंने पहिचान लिया है। कबीर ने अनेकता में एकता के तत्व देखे हैं। जब सन्त को सन्त मिलते हैं, तब प्रेम की बदली छा जाती है और सत्य ज्ञान एवं आनन्द की बारिश होने लगती है। मैंने कबीर साहेब का दुर्लभ सन्त समागम किया है जो मेरे जीवन के लिए परम सुखद है। सन्तों से मेरी प्रेम-सगाई है। निर्वाण सन्तों का ही सुयश गाता है।"

निर्वाण साहेब के उपर्युक्त भाव का मूल पद उनकी पदावली में संग्रहीत है, जो निम्न है—

कबीरा से कैसे दिल लुभायो।
साधु तेरे दिल में अचरज आयो ॥ टेक ॥
कबीरा से गुरु कैसे नाता, निर्गुण के गीत गायो।
हम तो सिरगुण राम के प्यारे, यहि भेद दुखदायो ॥ 1 ॥

कबीरा जुगन-जुगन का योगी, अवधू को पिछनायो।
रामानंद गुरु सिर पे धार के, काशी डेरा लगायो ॥ 2 ॥
भेदाभेद चतुराई छांड़े, सन्त से मेरी सगायो।
चरण कमल चाहूँ सन्त का, प्रेमे रहूँ लिपटायो ॥ 3 ॥
कबीरा जौहरी ठाढ़े हाट में, अवधू अभेद पिछनायो।
सन्त को सन्त जबहि भेटा, प्रेम बदरिया छायो ॥ 4 ॥
दुर्लभ सन्त समागम कीनो, जीवन को सुखदायो।
सन्तन से मेरी प्रेम सगाई, निर्वाण को यश गायो ॥ 5 ॥
(राम कबीर सम्प्रदाय, पृष्ठ 8, डॉ० कांति कुमार सी० भट्ट)

सूरत से चलकर अनेक कार्यक्रम करते हुए कबीर साहेब गिरनार पधारे थे। वहाँ सर्व धर्म सम्मेलन हुआ था। डॉ० कांतिकुमार भट्ट ने इस सम्मेलन में सम्मिलित होने वाले विविध मत के सन्तों के नाम दिये हैं। इसमें वैष्णव, शैव तथा शाक्त—सभी मत के धार्मिक नेता इकट्ठे हुए। सबके प्रवचन हुए। सब अपने-अपने प्रवचन में खींचतान की बातें करते रहे। अन्त में कबीर साहेब का अध्यक्षीय भाषण हुआ और उन्होंने सभी मतों के सार रूप में धर्म और अध्यात्म का निरूपण किया। कबीर साहेब के वचनों से जनता बहुत प्रभावित हुई। वैष्णव तथा शैवों ने कबीर साहेब की बातें मानकर आपस में मेल-मिलाप कर लिये; शाक्तों ने सारी बातें नहीं मानीं।

डॉ० कांतिकुमार सी० भट्ट आजकल गुजरात में कबीर साहेब तथा निर्गुणी धारा पर अधिकृत लेखक हैं। उन्होंने कबीर साहेब पर कई पुस्तकें लिखी हैं। उनकी एक पुस्तक है "कबीर परम्परा : गुजरात के सन्दर्भ में।" इसमें गुजरात के सन्तों पर कबीर साहेब के विस्तृत प्रभाव का खोजपूर्ण वर्णन किया है। थोड़ी बानगी लें। पीपा परिचई में लिखा गया—

शनैः शनैः धरती पग धरहीं। शनैः शनैः मारग अनुसरहीं ॥
गाँव गाँव कबीर की जाता। दरशन करत न लोग अघाता ॥[1]

1. **डॉ० कांतिकुमार सी० भट्ट, कबीर परंपरा : गुजरात के संदर्भ में पृष्ठ 310।**

अर्थात कबीर साहेब पृथ्वी पर धीरे-धीरे पैर रखते हैं और धीरे-धीरे रास्ते पर चलते हैं। गुजरात के गाँव-गाँव में कबीर की यात्रा हो रही है। लोग कबीर साहेब के दर्शन करते हुए नहीं अघाते।

गुजराती कवि मुकुन्द गुगुली ने अपने भक्तमाल (सं० 1708) में लिखा है कि रामानन्द के शिरोमणि शिष्य कबीर गुरुकृपा से पीरों के भी पीर हुए थे। सर्वत्र "कबीर" "कबीर" सुन पड़ता था।[2] जीवन जी महाराज ने कबीर साहेब को "सब सन्तन को सिर"[3] कहा है। गुजरात के बाबा दीन दरवेश ने कबीर साहेब के गुजरात भ्रमण के सन्दर्भ में एक कुंडलिया के अन्त में लिखा है—

कहत दीन दरवेश "सत" का शब्द सुनाया।
करुणा सिंधु कबीर बन्दी छुड़ावन आया॥[4]

गुजराती के समर्थ समालोचक श्री ब० क० ठाकोर ने कबीर की वाणी का मूल्यांकन करते हुए इसे "सिद्ध मंत्रों की चमत्कारिक गुटिका" कहा है। यथा—

"अन्या अनन्य परचामरि ए पदावलि।
ए मंत्र-सिद्ध गुटिका भव-तापि हारि॥
आत्मा तणी तरस, भूख निवारती ए।
हन्ता तणी अमरता, सरजंत ए सुधा॥"[5]

कवि श्री उमाशंकर जोशी ने मध्य काल में भारत की आत्मा को सतेज रखने वाला तत्वज्ञ तथा गूढ़ कवियों में कबीर को "सर्व-शिरोमणि" माना है।[6]

---

2. वही, 310 से उद्धृत। प्रा० का० मा० ग्र० 11 पृष्ठ 229।
3. वही, पृष्ठ 311।
4. वही, पृष्ठ 311।
5. वही, पृष्ठ 311 से उद्धृत, कबीर संप्रदाय की भूमिका।
6. वही, पृष्ठ 311, अखो एक अध्ययन, पृष्ठ 265।

अखा-परंपरा के नड़ियाद निवासी महात्मा संतराम ने कबीर वाणी का महत्व समझाते हुए कबीर की आधी साखी को करोड़ ग्रंथों के बराबर कहा था—

आधी साखी कबीर की, कोटि ग्रन्थ करी जाण।
संतराम जग झूठ है, सुरति-शब्द पहिचान ।।[7]

कहा जाता है कि कबीर साहेब एक बार भ्रमण करते हुए बलख बुखारे देश तक चले गये। वे अपनी संत मंडली किसी बाग में छोड़कर राजदरबार में अकेले जा पहुँचे और द्वार में प्रवेश करने लगे। वहाँ खड़े दरबानों ने रोका और कहा कि यह राजदरबार है। यहाँ से आप अलग जाइए। कबीर साहेब ने कहा कि इस धर्मशाले में मैं थोड़ा समय विश्राम करूँगा।

दरबानों ने पुन: कहा—महाराज ! यह धर्मशाला नहीं, राजदरबार है।

कबीर साहेब ने कहा—यहाँ इस समय कौन निवास करता है ?

दरबानों ने कहा—बादशाह सुल्तान।

इसके पहले कौन रहता था ?

इसका पिता।

उसके पहले कौन रहता था ?

उसका पिता।

सुल्तान के बाद कौन रहेगा ?

इसका पुत्र।

कबीर साहेब ने कहा—यही है धर्मशाला। जहाँ पर एक जाता है और दूसरा आता है, इसी को तो धर्मशाला या मुसाफिरखाना कहते हैं।

कहा जाता है कि बादशाह ऊपर छत पर घूम रहा था और ये सारी बातें सुन रहा था। वह इन बातों से प्रभावित हुआ। कबीर साहेब को कोई फकीर मानकर अपने पास बुलवाया। जब परिचय हुआ, तब उसने अपना अहोभाग्य माना, क्योंकि उसने कबीर साहेब के नाम की प्रशंसा पहले ही सुन

7. वही, पृष्ठ 311, पद संग्रह, संतराम मंदिर, नड़ियाद।

रखी थी। बादशाह कबीर साहेब का शिष्य हो गया। कबीर साहेब संत-मंडली सहित काशी चले आये और सुल्तान कुछ दिन में राजपाट छोड़कर काशी कबीर साहेब के पास आ गया और विरक्त हो गया। उसकी प्रशंसा में कबीर साहेब के नाम से एक पद प्रसिद्ध है—

सुल्ताना बलख बुखारे दा।
शाही तज कर लिया फकीरी, सद्गुरु[8] ज्ञान पियारे दा ॥1॥
तब थे खाते लुकमा उमदा, मिश्री कंद छुहारे दा।
अब तो रूखा सूखा टूका, खाते सांझ सकारे दा ॥2॥
रचि रचि कलियाँ सेज बिछाती, फूलों न्यारे न्यारे दा।
अब धरती पर सोवन लागे, कंकर नहीं बुहारे दा ॥3॥
जा तन पहने खासा मल मल, तीन टंक नौ तारे दा।
अब तो भार उठावन लागे, गुद्दड़ दस मन भारे दा ॥4॥
जाके संग कटक दल बादल, झंडा जरी किनारे दा।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, फक्कड़ हुआ अखारे दा ॥5॥

अनेक कवियों तथा लेखकों ने कबीर साहेब का भ्रमण गुजरात, राजस्थान, पंजाब, बलख बुखारे, उत्तराखंड, मगध, वैशाली, बंग, आसाम, उड़ीसा, मध्य भारत, कर्णाटक तथा अन्य दक्षिणी भारत में चित्रित किया है। कबीर साहेब ने स्वयं बीजक में कहा है—

देश विदेशे हौं फिरा, गाँव गाँव की खोरि।

---

8. 'अल्ला नाम पियारे दा' पाठांतर है।

पांचवां अध्याय : जीवन तथा जीवनवृत्त

कबीर साहेब की वाणियों में आये हुए आध्यात्मिक रूपकों के रहस्य को न समझकर तथा उनका स्थूल अर्थ कर विद्वानों ने उनको गृहस्थ सिद्ध करने की चेष्टा की है जो सर्वथा अनर्थ है।

कुछ विद्वान कबीर साहेब को आजीवन गृहस्थ बताते हैं और कुछ बताते हैं कि वे पहले गृहस्थ थे किन्तु पीछे से विरक्त हो गये थे। इतिहास-ग्रन्थ के अभाव में किसी महापुरुष के जीवन-दर्शन को समझने के लिए दो माध्यम हैं, एक उनकी परम्परा जो बाह्य साक्ष्य है और दूसरा उनका साहित्य जो अन्तस्साक्ष्य है।

यह सर्वविदित है कि कबीर साहेब "देश विदेशे हौं फिरा" होते हुए भी समय-समय से काशी में अधिक रहते थे। जहाँ वे रहते थे वही आजकल कबीर चौरा के नाम से प्रसिद्ध है। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध विद्वान पण्डित सर्वानन्द, जिन्होंने दूसरों को परास्त कर अपना नाम सर्वाजीत रखा था, कबीर साहेब से प्रभावित होकर उनके विरक्त शिष्य बन गये थे और उनका नाम पड़ा था श्री श्रुतिगोपाल साहेब। वे ही काशी कबीर चौरा के प्रथम गद्दीनशीन हुए। उसके बाद परम्परा चली और आजकल उसकी इक्कीसवीं पीढ़ी है। यह पूरी परम्परा विरक्त है। यहाँ कबीर साहेब के विरक्त होने का ही प्रमाण मिलता है। इसके अलावा श्री भगवान साहेब की भक्ताही गद्दी परम्परा तथा जागू साहेब की परम्परा जो कबीर साहेब के काल से चली आयी है, पूर्ण विरक्त है। इन सबकी मान्यता है कि कबीर साहेब विरक्त थे। कबीरपन्थ के श्री धर्म साहेब की शाखा में गृहस्थ तथा विरक्त दोनों प्रकार की गद्दियाँ हैं। वे भी कबीर साहेब को विरक्त मानते हैं। देश-विदेश में फैले हुए कबीर पन्थ के हजारों मठों तथा उनके भक्तों में कबीर साहेब के आजीवन विरक्त होने की ही बात फैली है।

नाभादास जी महाराज ने, जो कबीर साहेब के तत्काल बाद हुए हैं, अपने मूल वचन में कबीर साहेब के गृहस्थ होने की जरा भी चर्चा नहीं की है।

कबीर साहेब के जीवन काल में रहने वाले सूरत (गुजरात) के वैष्णव सन्त श्री निर्वाण साहेब ने, जिन्होंने कबीर साहेब का अपने आश्रम में ले जा कर स्वागत भी किया था, कबीर साहेब को विरक्त सन्त लिखा है। निर्वाण साहेब ने अपने पद में लिखा है—

कबीरा जुगन-जुगन का जोगी, अवधू को पिछनायो।

अर्थात कबीर युग-युग के योगी तथा अवधूत (त्यागी साधु) हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर साहेब की परम्परा जो बाह्य साक्ष्य केरूप में विद्यमान है, उन्हें विरक्त मानती है।

मोहसिन फानी ने सन 1670 में दबिस्तान नामक पुस्तक लिखी। आपने उसमें लिखा है—"कबीर एक वैरागी थे।"[1]

अन्तस्साक्ष्य में उनकी प्रामाणिक वाणियों का संग्रह बीजक है। बीजक में कबीर साहेब ने लोई, कमाल, कमाली, धनिया, रमजनिया आदि किसी नाम की चर्चा नहीं की है और न अपने को कहीं भी गृहस्थ होने का संकेत किया है। बल्कि उनकी वाणी में वैराग्य भरा है। बीजक में उनका जगत-प्रसिद्ध पद है—

माया महा ठगिनी हम जानी ॥1॥
त्रिगुणी फांस लिये कर डोले, बोले मधुरी बानी ॥2॥
केशव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी ॥3॥
पण्डा के मूरति ह्वै बैठी, तीरथ हू में पानी ॥4॥

1. कबीर : एक अनुशीलन, पृष्ठ 22, डॉ० राम कुमार वर्मा।

योगी के योगिनि ह्वै बैठी, राजा के घर रानी ॥5॥
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू के कौड़ी कानी ॥6॥
भक्ता के भक्तिनि ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी ॥7॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, ई सब अकथ कहानी ॥8॥
(बीजक, शब्द 59)

मोह का जो कुछ कारण बने, वह माया है। इस पद में माया के अन्य रूपों के वर्णन के साथ-साथ कहा गया कि केशव के कमला, शिव के भवानी तथा ब्रह्मा के ब्रह्मानी उन्हें विमोहित करने के लिए माया बन गयीं। यदि कबीर साहेब स्वयं लोई या किसी स्त्री के साथ संयुक्त होते तो वे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को इसलिए कैसे मायाग्रसित कह सकते थे कि वे सरस्वती, लक्ष्मी तथा भवानी में बंधे हैं।

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि कै मैली कीन्हीं चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया॥

इस जगत-प्रसिद्ध पद का अर्थ क्या होगा? इस पर विद्वानों को विचार करना चाहिए।

कबीर साहेब बीजक में और भी कहते हैं—

माया के झक जग जरे, कनक कामिनी लाग।
कहहिं कबीर कस बांचिहो, रूई लपेटी आग॥
माया जग सांपिनि भई, विष लै पैठि पताल।
सब जग फन्दे फन्दिया, चले कबीरू काछ॥
साँप बिच्छू का मन्त्र है, माहुरहू झारा जाय।
विकट नारि के पाले परे, काढ़ि कलेजा खाय॥
कनक कामिनी देखि के, तू मत भूल सुवंग।
मिलन बिछुरन दुहेलरा, जस केंचुलि तजत भुवंग॥
(बीजक, साखी 141, 142, 143, 148)

"जहाँ जराई सुन्दरी, तू जनि जाय कबीर। उड़ि के भसम[1] जो लागई, सूना होय शरीर" कहने वाले कबीर को सपत्नीक बताना निश्चित ही उनके प्रति घोर अन्याय करना है।

लब्धप्रतिष्ठ विद्वान डॉ० रामकुमार वर्मा ने बीजक के बाहर की कुछ पंक्तियों को प्रमाण मानकर जिनमें कि आध्यात्मिक रूपक है, स्थूल अर्थ करके कबीर साहेब की दो पत्नियां होने की कल्पना कर डाली है। उनकी प्रमाण-पंक्तियाँ ये हैं—

मेरी बहुरिया को धनिया नाउ। लै राखियो रमजनिया नाउ।
पहली कुरूपि कुजाति कुलखनी। अबकी सरूपि सुजाति सुलखनी।

उक्त पंक्तियाँ बीजक के बाहर की हैं। परन्तु पंक्तियों का भाव अच्छा है। यहाँ अच्छी और बुरी बहुरिया के रूपक में अच्छी और बुरी वृत्तियों का निरूपण है। पंक्तियों का सरल अर्थ है कि मेरी वृत्ति का नाम धनिया था। अर्थात मेरी पहली वृत्ति धन-दौलत एवं सांसारिकता में लिप्त थी, परन्तु अब मैंने उसका नाम रमजनिया रख दिया है। अब वह राम में रम रही है। पहली वाली वृत्ति कुरूपा, कुजाति एवं कुलक्षण वाली थी। अर्थात पहली वाली वृत्ति विकारों में लिप्त थी, और अब पीछे वाली वृत्ति सरूपा, सुजाति एवं सुलक्षण वाली हो गयी है। अब वृत्ति शुद्ध हो गयी है।

स्वाभाविक साधक का मन पहले मलीन होता है और साधना करते-करते वही मन पीछे शुद्ध हो जाता है। इस क्रम में और पंक्तियाँ हैं—

पहली को घाल्यो भरमत डोल्यो, सँचु कबहुँ नहिं पायो।
अबकी घरनि धरी जा दिन थैं, सगलों भरम गवांयो॥

---

1. यहाँ भसम का शाब्दिक अर्थ नहीं है किन्तु लाक्षणिक अर्थ है स्मरण होना। अर्थात् जहाँ सुन्दरी जलाई गयी हो, वहाँ भी मत जाओ। अन्यथा उसकी याद होकर मन खराब हो सकता है।

अर्थात—पहले वाली द्वारा भटकाये जाने से मैं भ्रमता-भटकता रहा और कभी सुख नहीं पाया, और अबकी गृहणी जब से पकड़ी, तब से सारी भ्रांतियाँ मिट गयीं।

यहाँ भी वही पूर्वक्रम है कि पहले वाली असंस्कारी एवं मलिन वृत्ति के भटकाने से मैं भटकता रहा और कभी आत्मशांति नहीं मिली। किन्तु जब से शुद्ध वृत्ति पकड़ी, तब से सारे भ्रम मिट गये। "सगलों भरम गवाँयो" वाक्य पर ध्यान देने योग्य है। क्या किसी अच्छी पत्नी के आने से जीव के सारे भ्रम मिट जाने की बात सोची जा सकती है। सारे भ्रम तो सच्चे ज्ञान से एवं मन की पवित्रता से मिटते हैं। इतने ज्वलंत आध्यात्मिक रूपक तथा उसके सरल अर्थ का दुरुपयोग कर इसके द्वारा कबीर साहेब को गृहस्थ सिद्ध करना महती भूल है।

जिस ग्रन्थ को डॉ० वर्मा जी ने प्रमाण माना है, उसी की ये अगली पंक्तियां भी हैं—

मुई मेरी माई, हऊ खरा सुखाला।
पहरिउ नहिं दगली, लगै न पाला॥

अर्थात्—मेरी माता मर गयी, इसलिए मैं बहुत सुखी हो गया। अब न अंगरखा पहनूंगा और न मुझे ठंढी लगेगी।

यदि उक्त पद का उक्त अभिधा (शाब्दिक) अर्थ मात्र कर दिया जाय, तो पागल कथन के अलावा कुछ नहीं होगा। शाब्दिक अर्थ होगा "कबीर साहेब अपनी माता की मरण-कामना इसलिए करते थे कि वे कबीर साहेब को अंगरखा पहनाती थीं। और जब माता मर गयीं, तब कबीर साहेब बहुत खुश हो गये और कहने लगे कि अब मुझे कोई अंगरखा पहनाने वाला नहीं रह गया और अंगरखा न पहनने से अब मुझे ठंढी नहीं लगेगी।" सारी बातें ऊटपटांग !

क्या कबीर साहेब जैसे उच्च पुरुष अपनी माता की मरण-कामना इसलिए कर सकते हैं कि वे उन्हें अंगरखा पहनाती थीं। फिर अंगरखा न पहनने से

ठंढी न लगना और उल्टी बात है । अंगरखा न पहनने से तो ठंढी लगती है ।

वस्तुत: इस पंक्ति का भी अभिधा अर्थ नहीं, किन्तु लक्षणा अर्थ है । कबीर साहेब की बहुत-सी वाणियां लक्षणा अर्थ की हैं । कवीर साहेब इस चौपाई में कहते हैं कि मेरी माया रूपी माता जो बारम्बार मुझे शरीर रूपी अंगरखा पहनाती थी, वह ज्ञानोदय होने से मर गयी । इसलिए मैं बहुत खुश हो गया । अब न शरीर रूपी अंगरखा पहनूंगा और न सांसारिकता एवं भवदुख की ठंढी लगेगी ।

डॉ० वर्मा की उक्त मिथ्या धारणा पर असहमति प्रकट करते हुए श्री पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव लिखते हैं—"अब यह अपनी रुचि है कि हम ऐसे पदों में आए हुए कुल-सम्बन्ध सूचक शब्दों का मुख्यार्थ लेकर कबीर की पत्नी के देवर, जेठ, ननद, बाप, सगे भइया (बा०प० 230) आदि का इतिहास ढूंढ़ निकालने में माथापच्ची करें या इनके सांकेतिक अर्थ लेकर संगति बैठायें । हम नहीं समझते कि अपने कुल वालों का यह असंगत पचड़ा सुनाने में कबीर का क्या उद्देश्य हो सकता था । हाँ, सांकेतिक अर्थ से अवश्य उनके भाव पूर्णतया स्पष्ट हो जाते हैं । कबीर ने राम को भुलवाने वाली 'बौरी मति' और राम में रमने वाली 'सुन्दर मति' का उल्लेख अन्यत्र किया भी है[3] ।"

डॉ० युगेश्वर जी लिखते हैं—"कबीर की दो पत्नियों की कल्पना और उस पर यह पहली दूसरी का अनुमान हिन्दी की कविता के अध्ययन का अच्छा उदाहरण है । इस प्रकार की कल्पनाएँ बिलकुल छिछली और सतही हैं । आश्चर्य तब होता है जब यह प्रसिद्ध विद्वानों-द्वारा कही जाती हैं । इसमें पहली बात तो यह कि कबीर रूपकों में बात करते हैं । उन्होंने कहीं भी अपनी पत्नी का नाम लोई नहीं कहा । हाँ, धनियां अवश्य कहा है । किन्तु धनियां और रमजनियां केवल तुक के लिए है । ध्यान रखना होगा कि कबीर अपने को भक्त और भगवान दोनों मानते हैं । इसलिए वे स्त्री मात्र का पर्याय धन्या का

---

3. **कबीर साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ 341 साहित्य रत्न माला कार्यालय, बनारस, वि० सं० 2008 ।**

तद्भव धनिया अपनी पत्नी का नाम बताते हैं। धनियां और रमजनियां केवल प्रतीक हैं। यहाँ उनकी न तो कोई पहली पत्नी थी न कोई दूसरी। जिसे वे पहली कहते हैं वह माया है और दूसरी है भक्ति[4]।''

कबीर साहेब ने बीजक में कहा है ''तुम यहि विधि समभो लोई'' (शब्द 82) तथा ''कहहिं कबीर सुनो नर लोई'' (शब्द 104) यहाँ लोई का अर्थ ''लोगों'' है। कुछ विद्वान 'लोई' शब्द घसीटकर उसे स्त्री बना देते हैं।

डॉ० युगेश्वर लिखते हैं—''डॉ० माता प्रसाद गुप्त द्वारा संपादित मधु-मालती में लोई का प्रयोग 'लोग' के अर्थ में आया है—

कलि औतरिभा अमरन कोई
अंत हाथ पछितावा लोई।
बूझि पढ़े आखर मोर लोई ॥

शेष अब्दुल कुद्दूष गंगोही के 'अलख बानी' में लोई शब्द के प्रयोग अनेक हुए हैं—

अलख दास आखै सुन लोई।
चरपट कहै सुनो रे लोई।

गोरख बानी में लोई शब्द—

बन्दत गोरखनाथ सुनो नर लोई।

''साफ है कि कबीर कहीं भी लोई को अपनी स्त्री नहीं कहते। लोई को कबीर की स्त्री कहना किसी पण्डित की भाषा विज्ञानी भूल थी। किसी प्रभाव-शाली पण्डित के कारण लोई कबीर की पत्नी के रूप में जनश्रुति बन गयी। यह भी हो सकता है कि कभी किसी ने इसका दार्शनिक प्रयोग किया हो। कबीर पुरुष है और समस्त सृष्टि प्रकृति। लोक, प्रकृति स्त्री और कबीर

4. कबीर चौरा पत्रिका, काशी कबीर चौरा, अंक छठाँ, पृष्ठ 41, सितम्बर 1986।

ईश्वर पुरुष है। इस जनश्रुति की खोज आवश्यक है। अभी इतना ही कि कबीर ग्रन्थावली और प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर लोई व्यक्ति वाचक नाम नहीं है। इसलिए इसके कबीर की पत्नी होने का सवाल नहीं उठता।........ कबीर की पत्नी का नाम लोई बिलकुल ही काल्पनिक और भ्रममूलक आधारों पर प्रचलित है।"[5]

यदि कबीर साहेब के रूपकों के लक्षणा अर्थ को न समझकर उसका अभिधा (शाब्दिक) अर्थ किया जाय, तो कबीर साहेब के मंतव्य को नहीं समझा जा सकता। मैं यहाँ बीजक के दो पद दे रहा हूँ। मनन करें—

माई मैं दूनों कुल उजियारी ॥1॥
सासु ननद पटिया मिलि बंधलो, भसुरहि परलों गारी ॥2॥
जारों मांग मैं तासु नारि की, जिन सरवर रचल धमारी ॥3॥
जना पाँच कोखिया मिलि रखलों, और दुई औ चारी ॥4॥
पार परोसिनि करों कलेवा, संगहिं बुधि महतारी ॥5॥
सहजे बपुरे सेज बिछावल, सुतलिऊँ मैं पाँव पसारी ॥6॥
आवों न जावों मरों नहिं जीवों, साहेब मेट लगारी ॥7॥
एक नाम मैं निजु कै गहलों, ते छूटल संसारी ॥8॥
एक नाम मैं बदि कै लेखों, कहहिं कबीर पुकारी ॥9॥

(बीजक, शब्द 62)

रूपक—हे माता ! मैं दोनों कुल को प्रकाशित करने वाली हूँ ॥1॥ जब मैं ससुराल में गयी तो सासु और ननद को खाट की पाटी में बाँध दी, और जेठ को खूब गाली दी ॥2॥ जिन्होंने सरोवर में उधम मचाया, उस नारी की मैंने मांग जला दी। उसको विधवा कर दी ॥3॥ पाँच जनों को तो मैंने अपने बगल में दवा लिया तथा दो-चार अन्य लोगों को भी दे रगड़ा ॥4॥ पास-पड़ोस में रहने वालों को जलपान में खा गयी; परन्तु बुद्धि-माता को साथ में

---

5. वही पृष्ठ 42।

रखती हूँ ।।5।। बेचारे पति देव तो बड़े सहज एवं सरल हैं । उन्होंने मेरी शय्या बिछा दी और मैं पांव पसारकर सो गयी ।।6।। अब तो न आना है न जाना है, न मरना है और न जन्मना है । साहेब ने सांसारिक मोह को मिटा दिया ।।7।। मैंने एक नाम को अपना करके पकड़ लिया जिससे सांसारिकता छूट गयी, या जिससे संसार के अन्य लोग भी भवबन्धन से छूट जाते हैं ।।8।। कबीर साहेब पुकारकर कहते हैं कि एक नाम की मैंने प्रतिज्ञापूर्वक परीक्षा कर ली है" ।।9।।

ननदी गे तैं विषम सोहागिनि, तैं निन्दले संसारा गे ।।1।।
आवत देखि मैं, एक संग सूती, तैं औ खसम हमारा गे ।।2।।
मोरे बाप के दुइ मेहररुआ, मैं अरु मोर जेठानी गे ।।3।।
जब हम रहलि रसिक के जग में, तबहि बात जग जानी गे ।।4।।
माई मोरि मुवलि पिता के संगे, सरा रचि मुवल सँगाती गे ।।5।।
आपुहि मुवलि और ले मुवली, लोग कुटुम संग साथी गे ।।6।।
जौं लौं श्वास रहे घट भीतर, तौ लौं कुशल परी हैं गे ।।7।।
कहहिं कबीर जब श्वास निकरि गौ, मन्दिर अनल जरी हैं गे ।।8।।
(बीजक, कहरा 11)

रूपक—अगे ननदी ! तू बड़ी बलवान अहिवाती एवं अत्यन्त सौभाग्यवती है । तू ने सारे संसार को नींद में सुला रखी है ।।1।। जब मैं आती हूँ, तब देखती हूँ कि तू और मेरा पतिदेव एक साथ सोये हुए हैं ।।2।। मेरे पिता की दो पत्नियाँ हैं, एक मैं और एक मेरी जेठानी ।।3।। जब मैं रसिक-जगत में थी तभी लोग इस बात को जान गये थे ।।4।। आगे चलकर मेरी माता मेरे पिता के साथ मर गयी और इस वियोग में उनके संगी-साथी भी चिता रचकर उसमें जल मरे ।।5।। मेरी माता तो मरी ही, परन्तु वह अन्य कुल-कुटुम्ब और साथियों को भी ले मरी ।।6।। जब तक शरीर में श्वास है, तब तक कुशल है ।।7।। कबीर साहेब कहते हैं कि जब शरीर से श्वास निकल गया तो यह शरीर-मन्दिर आग में जल जाता है ।।8।।

उक्त दोनों पद स्त्री-मुख वचन है। एक में है कि हे माता, मैं दोनों कुल को प्रकाशित करने वाली हूँ और ससुराल में जाते ही मैंने अपनी सासु तथा ननद को खाट की पाटी में बाँध दिया इत्यादि। दूसरे में है कि हे ननदी, तू बड़ी सोहागिन है इत्यादि। इन पदों के आधार पर कोई कबीर साहेब को यह मान ले कि वे तो स्त्री थे, तो उसकी बुद्धि की बलिहारी होगी। क्या कबीर साहेब स्त्री थे और वे अपनी सासु, ननद, जेठ, जेठानी, पति आदि का वर्णन कर रहे हैं?

वस्तुतः इन रूपकों में आध्यात्मिक वर्णन है। पहले पद का अर्थ इस प्रकार समझना चाहिए—

स्वरूपस्थ वृत्ति चेतनाशक्ति से कहती है कि हे माता, मैं स्वार्थ और परमार्थ—दोनों कुलों को प्रकाशित करने वाली हूँ ॥1॥ संशय-सासु और कुमति-ननद को मैंने अपनी स्वरूपस्थिति-शय्या की पाटी में बाँध रखी है और अहंकार जेठ को खूब गाली दी है ॥2॥ अविद्या-नारी की मैंने माँग जला दी है जिसने संसार-सरोवर में दुराचार का उधम मचा रखा है ॥3॥ पाँच ज्ञानेन्द्रियों को तो बगल में दबा लिया—उनका दमन कर दिया। दो शुभाशुभ और चार—मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार को वश में कर लिया ॥4॥ नाना कल्पनाएँ और दुर्स्वभाव रूपी जो पार-परोसिनि थीं, उनका मैंने जलपान कर लिया किन्तु जीवन-यात्रा के लिए साथ में सुबुद्धि रूपी माता को रखती हूँ ॥5॥ बेचारे स्वरूपज्ञान ने सहज समाधि की शय्या बिछा दी और मैं पांव पसारकर सो रही हूँ ॥6॥ अब आने, जाने, मरने, जन्मने का भय मिट गया है। साहेब ने सारे मोह मिटा दिये या जहाँ तक लोक-लोकांतरों में अलग साहेब मानकर मन भटकता था, वह सब मोह छूट गया क्योंकि परम साहेब तो अपना चेतन स्वरूप है ॥7॥ जिसका नाम चेतन या राम है उस स्वस्वरूप को ही मैंने ग्रहण कर लिया है जिससे मेरी सांसारिकता छूट गयी है या इस सिद्धान्त से संसार के अन्य लोगों का भी उद्धार हो सकता है ॥8॥ कबीर साहेब पुकारकर कहते हैं कि मैंने निश्चयपूर्वक एक नाम की परख कर ली है ॥9॥

दूसरे पद का अर्थ इस प्रकार समझें—

विद्यावृत्ति कहती है अगे[6] कुमति-ननदी, तू अत्यन्त सौभाग्यवती है। तू अपने काम में सफल है। तू ने सारे संसार को अपनी मोह-नींद में सुला दी है ॥1॥ मैं जब आती हूँ तो देखती हूँ कि तुम और मेरा पति-जीव एक साथ सोये हैं। अर्थात तू सब जीवों को विमोहित किये रहती है ॥2॥ मेरे अहंकार-पिता की दो पत्नियाँ हैं, एक मैं (विद्या) तथा दूसरी मेरी जेठानी (अविद्या)॥3॥ जब मैं रसिक जगत में थी, ज्यादा संसारी थी, तभी यह बात लोग जान गये थे ॥4॥ मेरी ममता-माता मेरे अहंकार पिता के साथ मर गयी। उसके संगी-साथी अविद्या के परिवार भी ज्ञान-चिता में जल मरे ॥5॥ इस प्रकार ममता-माता स्वयं तो मरी ही, लोक-कुटुम्ब-संगी-साथियों को लेकर समाप्त हो गयी ॥6॥ जब तक शरीर में श्वास है, तब तक अविद्या को नष्ट कर कुशल-कल्याण करने का अवसर है ॥7॥ कबीर साहेब कहते हैं कि जब श्वास निकल जायेगा, तब शरीर-मंदिर आग में जल जायेगा, फिर कुछ करना सम्भव नहीं है ॥8॥

इन दोनों शब्दों के आध्यात्मिक रूपों का कितना सुन्दर कल्याणकारी अर्थ है, सोचते ही बनता है। इसका स्थूल अर्थ करने वाले भ्रम में न पड़ेंगे तो क्या होगा ?

लेखक लोग बात को कहाँ से लेकर कहाँ तक पहुँचा सकते हैं इसका कोई ठिकाना नहीं। ऋग्वेद (8/85/13-16) के अनुसार श्री कृष्ण वन्य जातियों के नायक, सर्वहारा के रक्षक, पशुओं के भी पालक हैं। छांदोग्य उपनिषद् (3/17/6) के अनुसार देवकी-पुत्र कृष्ण आत्म-ज्ञान के जिज्ञासु हैं। उन्हें घोर अंगिरस-द्वारा आत्मबोध मिलता है। महाभारत में भी पहले श्री कृष्ण शूरवीर, राजनीतिज्ञ एवं ज्ञानी हैं। पीछे प्रक्षेप बढ़ाकर उन्हें परमात्मा बना दिया गया। परन्तु तब तक उनको पर-स्त्री-गामी और पर-नारियों से रास करने वाला कहीं नहीं चित्रित किया गया। महाभारत में रास आदि का वर्णन नहीं

6. 'गे' या 'अगे' मिथिला में नारियों का पारस्परिक संबोधन है।

है। परन्तु जब पंडितों ने श्री मद्भागवत बनाया तब उन्होंने उसमें श्रीकृष्ण का हजारों पर-नारियों के साथ नाचने-गाने, रास करने एवं रमण करने का चित्रण किया। पूरे भागवत में कहीं भी राधा का नाम नहीं आया। जब ब्रह्म-वैवर्त पुराण बना, तब उसमें राधा आ गयीं जो श्रीकृष्ण की परम प्रेयसी बन गयीं। इसके बाद गर्ग-संहिता की रचना हुई, जो एक विशालकाय ग्रन्थ है। इसमें श्रीकृष्ण के अरबों-खरबों पत्नियाँ एवं रखेलें हो गयीं।

राम-कथा के आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण में श्री राम केवल एक पत्नी व्रती हैं और इसमें वे पूर्ण दृढ़ हैं : परन्तु जब पीछे रसिक पंडितों ने रामकथा लिखनी शुरू की तब हनुमंत संहिता, काक भुशुण्डि रामायण, वृहत कोशल खंड आदि रामकथाओं में यह चित्रित किया गया कि श्री राम हजारों-हजारों पर-स्त्रियों को लेकर रास-रमण करते रहते थे। लेखक लोग बात को कहाँ से लेकर कहाँ तक पहुँचा सकते हैं इसका कोई ठिकाना नहीं।

फिर बाल-ब्रह्मचारी, परम विरक्तात्मा सन्त सद्गुरु कबीर साहेब को, लेखक लोग उनके आध्यात्मिक अर्थ बोधक रूपकों का भ्रमात्मक अर्थ कर, एक दो पत्नी युक्त सिद्ध करने का प्रयास करें तो क्या आश्चर्य !

यदि कुछ विद्वानों के ख्याल से यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि कबीर साहेब गृहस्थ थे या विरक्त ! तो भी उनको गृहस्थ सिद्ध करने का प्रयास व्यर्थ है। वैसे अंतस्साक्ष्य (बीजक) तथा वाह्य साक्ष्य (कबीरपंथ) से यह सिद्ध है कबीर साहेब परम विरक्त सन्त थे। इस बात को विद्वानों को मानने में क्या अड़चन है। कुछ विद्वान अपने व्यर्थ हठ में पड़कर विशाल कबीर पंथ के सन्त-भक्तों के दिलों में ठेस पहुँचाएँ और सत्य का वध करें यह उचित नहीं।

कबीर साहेब द्वारा जो सर्व सामान्य के लिए कही गयी उपदेशात्मक बातें हैं उन्हें उनके ही स्थूल जीवन पर घटाकर विद्वानों ने जो अर्थ किया है, वह घोर अनर्थ है। डॉ० रामकुमार वर्मा लिखते हैं—

कबीर कहते हैं—"मैने बाल्यावस्था में बारह वर्ष व्यतीत किये और बीस वर्ष तक कोई साधना नहीं की, तीस वर्ष तक किसी देवता की पूजा नहीं की और फिर पछिताते हुए वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ। "मेरा-मेरा" कहते ही सारा जन्म बीता। मेरी (आयु का) सागर पीकर (मृत्यु की) सर्पिणी अधिक बलवती हो गयी······

बारह बरस बालपन बीते, बीस बरस कछु तप न कीओ।
तीस बरस कछु देव न पूजा, फिर पछिताना विरधि भइयो॥
मेरी-मेरी करत जनम गइयो, साइर सोखि भुजं बलिओ॥"

मेरा यौवन व्यतीत हो गया, अब मैं बूढ़ा हो गया। अपने जीवन में मैंने कुछ भी भला नहीं किया। मैंने अपना यह अमूल्य जीवन कौड़ी के मोल फेंक दिया। कबीर कहते हैं कि हे माधव ! तू सर्वव्यापी है, तेरे समान कोई दयालु नहीं और मेरे समान कोई पापी नहीं—

मेरा जीवन जोबनु गइआ किछु कीआ न नीका।
इहु जीअरा निरमोल को कउड़ी लगि मीका॥
कह कबीर मेरे माधवा तू सब सरब बिआपी।
तुम समसरि नाहीं दइआलु मोहि समसरि पापी॥

(कबीर : एक अनुशीलन, पृष्ठ 45-46)

उक्त पदों का अर्थ करके डॉ० वर्मा जी यह बताना चाहते हैं कि इन बातों से कबीर के जीवन पर प्रकाश पड़ता है।

वर्मा जी से पूछा जाय कि उक्त पंक्तियों का अर्थ यदि उनके जीवन की व्याख्या है तो इसका तात्पर्य है कि कबीर ने अपने जीवन को व्यर्थ खो दिया था। जब वे बारह वर्ष बालपन में खोये जो कि सबके लिए स्वाभाविक है। परन्तु तीस बरस तक भी वे कोई देवता को न पूजने का पश्चाताप करते हैं, जबकि वे देवी-देवता मानते ही नहीं हैं। और उसके बाद पश्चाताप करते हुए बूढ़े हो जाते हैं और कहते हैं कि मेरी-मेरी कहते हुए जन्म व्यर्थ गया। यदि

यह सब उनके अपने जीवन की व्याख्या है तो कबीर एक साधारण दुनियादार की तरह जीवन को व्यर्थ खो देते हैं। ऐसी स्थिति में उनको वर्मा जी महान सन्त भी कैसे लिखते हैं। अपनी बातों के पूर्वापर विचार भी करना चाहिए।

वस्तुतः उक्त पंक्तियाँ सामान्य लोगों के जीवन का चित्रण है। उन्हें कबीर साहेब के जीवन पर घटाना उनके साथ अन्याय करना है। कबीर अनेक जन्मों के दिव्य संस्कारी पुरुष थे, स्वतः सिद्ध सन्त थे। उन्होंने अपने जीवन को व्यर्थ नहीं खोया था, किन्तु अपने जीवन के एक-एक क्षण का रचनात्मक दिशा में दोहन किया था।[7]

जीवन वृत्त

कबीर साहेब का जीवन वृत्त क्या था? उन्होंने अपने जीवन-निर्वाह का धंधा क्या चुना था? यदि कबीर साहेब जुलाहा के यहाँ पाले गये, तो बड़े होकर कपड़ा बुनना तथा उसे बेचना उनका निर्वाह-धंधा रहा होगा। उनके प्रामाणिक ग्रन्थ बीजक में चरखा-करघा एवं कपड़ा बुनने का रूपक आया है। वैसे नाई, कहार, कुम्हार, पण्डित आदि अनेकों के रूपक आये हैं; परन्तु हम

---

7. इन पंक्तियों के लेखक की पहली रचना वैराग्य संजीवनी के तीसरे छंद में गर्भावस्था, शिशुपन, बालकपन, किशोरावस्था के दुखों तथा जवानी के काम-प्रमाद, सांसरिक जीवन की दैन्यता का वर्णन करते हुए प्रथम पुरुष के रूप में यह भी लिखा है कि मैंने गरीबी के कारण बच्चों के पालन के लिए एक सेठ के यहां नौकरी की, उनके ताने सहे आदि।

यदि उक्त छंद से लेखक के जीवन का कोई मूल्यांकन करने लगे और उसका जीवन वृत्त लिखने लगे तो घोर अनर्थ होगा। क्योंकि वह अपने पूरे इक्कीस वर्ष के पूर्वाश्रम में न पारिवारिक कलह एवं कष्ट में था, न ही आर्थिक संकट में था और न उसने किसी सेठ के यहाँ नौकरी की थी। यह सब तो एक सामान्य चित्रण है।

उन्हें इन सब धंधों से संयुक्त नहीं मान सकते। वेदान्त-ग्रन्थों में घट-मृतका का रूपक तथा ऋग्वेद (10/130/1-2) में कपड़ा बुनने का रूपक आया है। इन सबसे हम उनके लेखकों को कुम्हार तथा जुलाहा नहीं सिद्ध कर सकते। वैसे ये सब काम बड़े पवित्र और ऊँचे हैं, और कोई वेदान्ती तथा ऋग्वेद का ऋषि घड़ा बनाता तथा कपड़ा बुनता रहा हो, तो उसको बारंबार बलिहारी है।

पुराकाल के आर्यों में अपने सारे काम करने में अटूट निष्ठा थी। वे स्वयं युद्ध, खेती, वस्त्र-वयन, औषध-निर्माण एवं सारे काम अपने हाथों से करते थे। ऋग्वेद का एक ऋषि कहता है—मैं मन्त्र द्रष्टा हूँ, पुत्र वैद्य है और पुत्री जौ भूनती है (ऋग्वेद 9/112/3)। एक ऋषि कहता है "बुनने के समय हमारा तंतु कभी टूटने न पाये (ऋग्वेद 2/28/5)।

इधर हजारों वर्षों से भारत के तथाकथित आभिजात्य वर्ग में यह धारणा हो गयी है कि जो मोटा काम करे वह न धार्मिक है और न बड़ा आदमी। इस धारणा ने भारत का काफी पतन किया है। कबीर साहेब ने यह आदर्श पुनः रखा कि अपने निर्वाह का धंधा करते हुए भी उच्च साधु-संन्यासी हुआ जा सकता है।

कबीर साहेब अपना कपड़ा बुनने का धंधा करते रहे होंगे और साधना तथा प्रचार का कार्य भी करते रहे होंगे। परन्तु जितने उनके दिन बीतते गये होंगे, उनका प्रचार बढ़ा होगा। वे अपने पचीस-तीस वर्ष की उम्र में ही बहुत प्रसिद्ध हो गये थे। अतएव पीछे अवश्य ही यह धंधा छूट गया होगा और वे निरंतर प्रचार एवं लोक-कल्याण में लग गये होंगे। वह जमाना गाड़ी-मोटर का नहीं था, और उनका भ्रमण देश के कोने-कोने में होता रहा, उन्हीं के वचन हैं 'देश विदेशों हौं फिरा।' ऐसी अवस्था में वे कुछ दिनों के बाद साधु वृत्ति में जीवन-पर्यन्त विचरते रहे।

क्या काशी क्या मगहर ऊसर

सदगुरु कबीर अनेक जन्मों के दिव्य संस्कारी एवं जन्मजात योगी थे और थे सब तरफ से पूर्णतया निष्पक्ष। वे किसी अंधविश्वास को किंचित भी नहीं रखना चाहते थे।

एक-दो ऐसे भी लेखक हुए हैं जिन्होंने लिखा है कि कबीर अपने काशी के विरोधियों से घबराकर जीवन के अन्त में मगहर चले गये। ऐसे लोग या तो अनभिज्ञ हैं या कबीर साहेब का मूल्य गिराकर आंकना चाहते हैं। वैसे जहाँ लोगों द्वारा अपना बराबर विरोध होता हो वहाँ से हटकर शांत-स्थल में रह कर जीवन बिताना विचारवान का काम है; परन्तु कबीर साहेब के सामने यह समस्या नहीं थी।

डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं—सिकन्दर लोदी ने कबीर को दण्ड दिया। पहले तो उन्हें हाथी के पैरों के नीचे कुचलवाना चाहा, फिर जंजीरों से बांध कर गंगा में डुबाना चाहा। कबीर की दोनों ही दण्डों से रक्षा हुई। सम्भव है तीसरी बार के दण्ड में कबीर इतने क्षत-विक्षत हुए हों कि वे काशी छोड़कर अपना प्राण त्यागने के लिए मगहर चले गये हों। इस तीसरे दण्ड का कोई संकेत कबीर के काव्य में नहीं है?"[1]

जब "तीसरे दण्ड का कोई संकेत कबीर के काव्य में नहीं है" तब वर्मा जी इसकी नयी कल्पना कर कबीर को क्षत-विक्षत चित्रित करने का प्रयास क्यों करते हैं? किसी महापुरुष के जीवन के साथ ऐसा खिलवाड़ नहीं करना चाहिए। कोई क्षत-विक्षत हो जायेगा, तो वहीं मरना चाहेगा कि काशी से मगहर के लिए दौड़ लगायेगा!

किसी भी सत्य का पहले-पहल कुछ लोगों द्वारा मजाक होता है, पीछे विरोध होता है और अंत में स्वीकार। यह संसार का दस्तूर है। कबीर साहेब

---

1. कबीर एक अनुशीलन, पृष्ठ 48-49।

का भी पहले-पहल काशी में कुछ निहित स्वार्थियों द्वारा विरोध हुआ होगा; इसमें दो राय नहीं। परन्तु कबीर कच्चे धागे से नहीं बने थे। वे फौलादी थे। लौहपुरुष थे। जो निरन्तर अविनाशी राम में रमा हो, उसे देह की चिन्ता नहीं होती। देह की चिन्ता करके कोई भी महापुरुष अपने सत्य का न आचरण कर सका है और न प्रचार। जीवन जी महाराज के शब्दों में कबीर साहेब "वीरन में महाबीर" थे।

कबीर साहेब के प्रति विरोध उनकी उम्र के पाँच-छह दशक तक ही रहा होगा। वे आम जनता के प्रतिनिधि और श्रद्धेय तो पहले से ही थे, किन्तु विद्वानों, पंडितों, राजाओं एवं तथाकथित उच्च वर्ग के भी सम्माननीय हो गये थे, और वे इस सम्मान का दशकों उपभोग कर अपनी जरजर अवस्था में काशी छोड़कर मगहर गये थे। जब कबीर साहेब काशी छोड़कर मगहर गये, उसके बहुत पहले से वे भारत में एक परम श्रद्धेय, परम संत के रूप में ही नहीं, किन्तु परम योगी, परम अवधूत, परम सिद्ध एवं भावुकों द्वारा अवतार के रूप में माने-जाने लगे थे। कबीर साहेब अवतारवाद, अलौकिकता एवं चमत्कार के विरोधी थे, और वे इनका विरोध जीवनपर्यन्त करते रहे। किन्तु उनको भावुक व्यक्ति अवतार कहना चाहते थे।

ऐसे भी पंडिताऊ लेखक हैं जिन्होंने लिख मारा है कि कबीर अपने हठ के कारण काशी छोड़कर अन्त में मगहर गये। उन लेखकों के ख्याल से मुक्ति धाम काशी की अवहेलना कबीर को नहीं करना चाहिए था। भारत के सनातन धर्मी काशी में मरकर मुक्ति की आशा करते हैं और कबीर इस सनातन धर्म का तिरस्कार कर अन्त में मगहर जाते हैं, तो वे यह अपना हठ जाहिर करते हैं।

वस्तुतः कबीर जैसे उच्चतम पुरुष को समझने के लिए, समझने वाले का उच्चतम दिल तो होना ही चाहिए। समझने वाला भले ही उतना उच्चतम आचरण का न हो किन्तु उसकी उच्चतम उदारता होनी ही चाहिए। जिसने

तथाकथित धर्मशास्त्रों के वचनों में अपने मन को बांध दिया है, जिसमें स्वतन्त्र समझ नहीं है, वह कबीर जैसे निराले पुरुष को नहीं समझ सकता ।

कबीर साहेब समस्त अंधविश्वासों का उच्छेद करना चाहते थे । सारे अंधविश्वास किसी-न-किसी प्रकार किसी-न-किसी सत्य पर आवरण डालने वाले होते हैं । गया में और मगहर के आस-पास बौद्धों का पहले बोलबाला था । पीछे भी बौद्धों का अवशेष नाथपंथ के रूप में मगहर के आस-पास व्याप्त था । पंडित कहलाने वाले लोग बड़े चतुर होते हैं । वे किसी विरोधी बात को मीठी मार से मारकर अपना काम सिद्ध करते हैं । पंडित लोग नयी कल्पना करने में, नयी कहानी रचने में तथा समाज की बुद्धि अपनी ओर घुमाने में बड़े माहिर होते हैं । उन्होंने कहा कि गया या मगहर में मरने वाला नरक में जाता है, या गधा होता है । और काशी में मरने वाला मुक्त होता है । पंडितों का यह प्रचार इसलिए था कि जनता गया या मगहर की तरफ न जाकर काशी में आये और उन्हें पूजे । काशी में मरने से मुक्ति होती है यह एक अतिशयोक्ति है, असत्य है । इसके पीछे पंडितों का अपना स्वार्थ है ।

कबीर साहेब देख रहे थे कि जीवन भर विषयों एवं दुष्कर्मों में डूबे हुए शिक्षित एवं अशिक्षित लोग काशी में मरकर मुक्ति की आशा करते हैं, जो उनकी केवल भूल है । यह ठीक है कि जहाँ पवित्र लोग रहते हैं वहाँ का वातावरण अच्छा रहता है और वहाँ का निवास शांति में सहायक होता है । परन्तु अपने मन का कचड़ा स्वयं निकालना पड़ेगा, तभी कल्याण होगा । जिस प्रकार स्वार्थ और मूढ़ता पूर्वक यह प्रचार किया गया था कि काशी में मरकर मुक्ति होती है, उसका खण्डन कबीर जैसे निर्भय और निर्भ्रान्त पुरुष ही कर सकते थे ।

काशी में मरकर मुक्ति होती है यह कहाँ का सनातन धर्म है ? सनातन धर्म उसे कहते हैं जिसे संसार के सारे लोग मान सकें । ऐसी कल्पना तो वैदिक

और औपनिषदिक ऋषियों को भी नहीं जगी थी। यह भोंड़ी कल्पना बौद्धों के जोर को रोकने के लिए पंडितों ने बुद्ध-काल के बाद की है। यह कल्पना मुक्तिदायक नहीं; किन्तु मुक्ति-विरोधी है। वासनाओं का त्याग करके स्वस्वरूप की स्थिति ही मोक्ष है। भोले पंडितों ने उसे बच्चों का खिलौना बना रखा था और वे कहते फिरते थे कि अमुक स्थान, धाम में मरने से, अमुक नदी में नहाने से मोक्ष होता है। इससे अधिक खोखलापन और क्या होगा ?

कबीर साहेब ने काशी में घोषणा कर दी कि मैं काशी में नहीं मरना चाहता जहाँ मुक्ति का सस्ता नुस्खा बंटता है। मैं मगहर में मरना चाहता हूँ जहाँ मरने से गधा होने का भ्रम फैलाया गया है। काशी में इस बात की गूंज हो गयी। कबीर साहेब के पास शिक्षित-अशिक्षित, प्रेमी-भक्त आदि आने लगे। कबीर साहेब ने सबको संतोष दिया। मिथिला देश के पंडित जिन्हें मैथिल पंडित भी कहते हैं, कबीर साहेब के समय काफी विद्वान होते थे। आज भी वे विद्वान होते हैं। कई मैथिल पंडित आकर कबीर साहेब से कहने लगे— महाराज ! आप यह आश्चर्य की बातें करते हैं। लोग अन्तिम अवस्था में मुक्ति के लिए काशी में मरने आते हैं, और आप मगहर में मरने जा रहे हैं जहाँ पर मरने से लोग गधा हो जाते हैं। कबीर साहेब ने पंडितों को जो कुछ उत्तर दिया उन भावों को तत्काल पीछे निम्नांकित शब्द में उन्होंने बांध दिया है। उनका मूल वचन पढ़ें—

लोगा तुमहीं मति के भोरा ॥1॥
ज्यों पानी-पानी मिलि गयऊ, त्यों धुरि मिला कबीरा ॥2॥
जो मैथिल को साँचा ब्यास, तोहर मरण होय मगहर पास ॥3॥
मगहर मरै, मरै नहि पावै, अन्तै मरै तो राम लजावै ॥4॥
मगहर मरे सो गदहा होय, भल परतीत राम सो खोय ॥5॥
क्या काशी क्या मगहर ऊसर, जो पै हृदय राम बसै मोरा ॥6॥
जो काशी तन तजै कबीरा, तो रामहि कहु कौन निहोरा ॥7॥

(बीजक, शब्द 103)

अर्थात्—तुम लोग मुझे भोला समझते हो कि मैं मुक्तिधाम काशी को छोड़कर मगहर में मरने जा रहा हूँ। परन्तु ऐ लोगो ! तुम्हीं मति के भोले हो। जैसे पानी में पानी मिल जाता है, निश्चय समझ लो वैसे ही कबीर अपने स्वरूप-राम में पूर्णतया स्थित हो गया है। इसे न काशी की आवश्यकता है और न मगहर इसे अपने स्वरूप-राम से अलग कर सकता है। ऐ पंडितो ! यदि तुम मिथिला के सच्चे विद्वान हो; तो तुम्हारी मृत्यु भी मगहर के पास होना चाहिए। क्योंकि जो मगहर में मरता है, वह अमरत्व पाता है और यदि मगहर से अलग मरता है, तो राम को लज्जित करता है।

पंडितों ने कहा—वाह साहेब ! हम लोगों ने काशी में मरने से मुक्ति बतायी, तो आप मगहर में मरने से मुक्ति बता रहे हैं। यदि काशी का मुक्तिदायी होना ढकोसला है, तो मगहर का मुक्तिदायी होना ढकोसला क्यों नहीं ?

कबीर साहेब ने हँसते हुए कहा—पंडितो, आप लोग मगहर से मगहर-देश मत समझिए 'मग' कहते हैं रास्ता को और 'हर' कहते हैं ज्ञान को। अर्थात् जो ज्ञान-मार्ग में मरता है, वह पुनः मरने नहीं पाता, किन्तु अमरत्व पाता है। और यदि ज्ञान-मार्ग छोड़कर भावुकतापूर्वक काशी आदि में मरकर मुक्ति-प्राप्ति की आशा करता है वह राम-भजन के सत्य-सिद्धान्त को लज्जित करता है।

जो मगहर देश में मरता है वह गधा होता है, यह तो राम का विश्वास खो देना है। आत्म-विश्वास ही राम-विश्वास है, क्योंकि आत्मा ही, जीव ही, यह अपने आप चेतन शुद्ध स्वरूप ही राम है। जो व्यक्ति अपने चेतन-राम में निरन्तर रम रहा है, वह काशी में शरीर छोड़े या मगहर में या ऊसर जमीन में, क्या अंतर पड़ता है !

कबीर साहेब राम में इतने लीन थे, स्वस्वरूप में इतने तन्मय थे, कि उनको सारी पृथ्वी एक समान दिख रही थी। पहुँचा हुआ पुरुष सार्वभौनिक सत्य एवं सिद्धान्त को एकदेशीय एवं एकपक्षीय कैसे बना सकता है। मोक्ष तो स्वरूप-देश में स्थित होने से होता है। काशी-मगहर भौतिक देश उसके लिए कोई परिधि नहीं बना सकते।

कबीर साहेब कहते हैं कि यदि मैं काशी में रहकर इसलिए शरीर छोड़ूँ

कि इससे मुक्ति होगी और मगहर में इसलिए शरीर न छोड़ूं कि वहाँ मरने से गधा होना पड़ेगा तो राम-भजन, स्वरूप-स्थिति एवं आत्मस्थिति का क्या मतलब रहा ? सत्य द्रष्टा के लिए सारा संसार एक समान आदरणीय है ।

सबही भूमि बनारसी, सब निर गंगा होय ।
ज्ञानी आतमराम है, जा घट परगट होय ।।

कबीर साहेब को जब जीवन भर कोई बंधन नहीं बाँध सका था, तब यह पंडितों का बंधन उन्हें कैसे बाँध सकता था ? अतएव वे सबको समझा-बुझाकर मगहर के लिए प्रस्थान कर दिये ।

मगहर एक कस्बा है जो उत्तर-प्रदेश के बस्ती जिला में पड़ता है । बस्ती जिला उत्तरी भारत के अंतिमी छोर पर है । इसके पूर्व गोरखपुर जिला स्थित है। इसी मगहर में आमी नदी के तट पर सद्गुरु कबीर रहने लगे ।

कहा जाता है कि काशी नरेश वीरसिंह कबीर साहेब के शिष्य थे। वे अपनी सेना के साथ कबीर साहेब की सेवा में मगहर पहुंचे थे । उधर मगहर के स्थानीय नरेश बिजली खाँ भी कबीर साहेब के शिष्य थे । वे भी अपने दल-बल सहित कबीर साहेब की सेवा में पहुँचे ।

कहा जाता है कि माघ सुदी एकादशी वि० संवत 1575 को कबीर साहेब का मगहर में शरीरांत हुआ ।[1] शरीरांत के बाद हिन्दू उनके शरीर को जलाना तथा मुसलमान दफनाना चाहते थे ।

कहा जाता है कबीर साहब चादर ओढ़कर लेट गये । पीछे जब चादर उठायी गयी तो शरीर की जगह पर कुछ ताजे फूल मिले । हिन्दू-मुसलमानों ने उन्हें बांटकर एक ने उस पर समाधी बनायी, दूसरे ने मजार । ये दोनों मगहर में एक ही प्रांगण में स्थित हैं ।

वस्तुतः मृत शरीर भस्म होने के बाद उसके बचे हुए अस्थि को फूल कहते हैं । इन्हीं फूलों पर समाधि एवं मजार बने होंगे ।

1, कुछ लोग इस तिथि को काशी से मगहर प्रस्थान मानते हैं । कबीर कसौटी में यही बात लिखी है ।

छठां अध्याय : प्रामाणिक रचना–बीजक

'बीजक' सद्गुरु कबीर की प्रामाणिक रचना है। इसी के पाठ, पढ़ाई, भाष्य, टीका-व्याख्या आदि पूरे पन्थ में होते आये हैं। पन्थ के बाहर के विद्वानों ने भी पूर्व काल में इसी पर टीकाएँ तथा अनुवाद रचे हैं। जैसे प्रेमचन्द, अहमद शाह, वेसकट आदि विद्वानों ने बीजक पर इंगलिश में काम किये। राधास्वामी मत के श्री शिवव्रत लाल जी ने उर्दू में बीजक टीका लिखी इत्यादि।

बीजक के बाहर की वाणियाँ जो कबीर साहेब के नाम से प्रसिद्ध हैं जैसे गुरुग्रन्थ साहेब में, भखना जी की वाणी में, या सन्त कबीर, कबीर ग्रन्थावली, साखी ग्रन्थ आदि में, इनमें बड़ा पाठांतर है। इनमें कबीर साहेब के स्वर अवश्य हैं। परन्तु इनमें प्रक्षेपों की मात्रा अधिक है। इनमें भक्तों ने ऐसी वाणियों का मिश्रण किया है जिससे कबीर साहेब का भक्तरूप ज्यादा बनता है, क्रांतिकारी एवं दार्शनिक रूप कम। किन्तु बीजक पढ़ने पर कबीर साहेब का ज्वलंत क्रांतिकारी रूप सामने आता है और उनकी गम्भीर दार्शनिक गवेषणा प्रतिबिंबित होती है।

एक विद्वान ने अपने संकुचितता-वश तथा खोज की अपूर्णता से बीजक की प्रामाणिकता पर सन्देह व्यक्त किया, तो उसकी देखा-देखी एक-दो अन्य विद्वानों ने भी उनके स्वर में स्वर मिलाया। किन्तु काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान डा० शुकदेव सिंह ने बीजक का सम्पादन कर उस पर विस्तृत भूमिका लिखकर एक अच्छा काम किया। उन्होंने बीजक की प्रामाणिकता पर सन्देह करने वालों को पुनर्विचार करने का सुझाव दिया। डॉ० शुकदेव सिंह लिखते हैं—

"बीजक न केवल अन्यतम कबीरपन्थी साहित्य है, बल्कि प्रामाणिक कबीर साहित्य भी है। कबीर पन्थ का इसे 'वेद' या 'स्वसंवेद' भी कहा जा सकता है।" **(बीजक, भूमिका पृष्ठ 1)**

"वस्तुतः 'बीजक' कबीर पन्थ का आर्ष ग्रन्थ है। इसका संकलन और प्रचार कबीर के अनुयायियों के द्वारा हुआ है। इसीलिए इसे दर्शनग्रन्थ मानकर दार्शनिक टीकायें भी लिखी गयी हैं। बीजक की टीकायें सृष्टि, तत्व, स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्य देह की व्याख्या से भरी हुई हैं। टीकाकारों ने कहा है कि कबीर ने षटदर्शनी वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा का ध्यान नहीं रखा और बिना किसी पक्षपात के सब के शुभ के लिए कहते रहे।"

(बीजक, भूमिका पृष्ठ 54)

"इस प्रकार कबीर 'बीजक' कबीर–साहित्य की उस व्यापक भूमिका की सृष्टि करता हुआ दीख पड़ता है जिसके निर्माण में कबीर का व्यक्तित्व धीरे-धीरे घुलकर व्यक्ति नाम से मिशन बन गया और जो प्रायः साढ़े चार सौ वर्षों तक उनके अनुयायियों का आर्ष ग्रन्थ बनकर कबीरपन्थी आचार्यों की टीका-टिप्पणी, विश्लेषण तथा सम्प्रदाय निर्माण का हेतु रहा। वस्तुतः 'बीजक' को अन्यतम कबीर साहित्य के रूप में प्रतिष्ठा मिलनी ही चाहिए। क्योंकि यह प्रायः निर्विवाद सत्य है कि कबीर का अधिकांश जीवन काशी अथवा उसके आस-पास के प्रदेशों में व्यतीत हुआ, अतः उनकी भाषा में पूर्वी प्रयोगों की प्रचुरता स्वाभाविक ही है।"

(बीजक, भूमिका पृष्ठ 64)

डा० जयदेव सिंह तथा वासुदेव सिंह लिखते हैं—"इधर डा० शुकदेव सिंह ने 'बीजक' पर नया कार्य किया है। इसे साहित्यिक क्षेत्र में किया गया प्रथम महत्वपूर्ण प्रयास कहा जा सकता है। उन्हें बीजक के सम्बन्ध में डा० तिवारी के निष्कर्ष मान्य नहीं है[1]।" डा० जयदेव सिंह तथा वासुदेव सिंह पुनः लिखते हैं—"बाबू श्याम सुन्दर दास तथा अन्य विद्वानों द्वारा 'कबीर ग्रन्थावली' के सम्पादन-प्रकाशन का परिणाम यह हुआ कि साहित्यिक क्षेत्र में पदों और साखियों का ही अधिकाधिक प्रयोग हुआ, विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में इन्हीं को स्थान मिला। बीजक प्रायः उपेक्षित रहा, जबकि कबीर

---

1. कबीर वाङ्मय, खण्ड 1, उपोद्घात पृष्ठ 11।

पन्थियों में बीजक ही अधिक मान्य ग्रन्थ रहा है, उसे पन्थ का वेद माना जाता है। अमृतसर के गुरुद्वारे के कबीरपन्थी भगत 'बीजक' का ही पाठ करते हैं। कबीर के दार्शनिक सिद्धान्तों का सारतत्व 'बीजक' में ही उपलब्ध होता है, 'बीजक' का अर्थ ही है—गुप्तधन बताने वाली सूची। कबीर ने कहा है—

बीजक बित्त बतावै, जो वित्त गुप्ता होय।
ऐसे शब्द बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय॥

"जो वित्त या धन गुप्त होता है अर्थात कहीं पृथ्वी में गाड़ या अन्यत्र छिपाकर रखा जाता है, उसका पता केवल उसके 'बीजक' से ही लगता है, उसी प्रकार जीव के गुप्त धन को अर्थात वास्तविक स्वरूप को शब्द रूपी बीजक (गुरुद्वारा प्रदत्त ज्ञानदीक्षा) बतलाता है। कबीर का प्रमुख साहित्य—रमैनी, साखी और शब्द (पद) बीजक में उपलब्ध हैं। कबीर ने बीजक (रमैनी) में सृष्टि, मोक्ष, मनोमाया, माया से सावधानी, भवपन्थ के कष्टों, संसार की असारता, सत्यानुभव ज्ञान-भूमिका, देवादि-मोह विडंबना, सत्संग महिमा, आसक्ति से ज्ञान की दुर्लभता, सद्गुरु महिमा, भक्ति महिमा आदि का विशद विवेचन किया है। दर्शन के साथ काव्य का सुन्दर सामंजस्य 'बीजक' की अन्य विशेषता है। कबीर के सिद्धान्त, साधना एवं काव्य-वैशिष्टय पर विस्तार से स्वतन्त्र रूप से लिखा जायगा। यहाँ हम केवल इतना संकेत करना चाहते हैं कि अब तक कबीर वाणी के इस महत्वपूर्ण अंश पर साहित्यकारों द्वारा अपेक्षित विचार का अभाव वस्तुतः कबीर के साथ अन्याय ही कहा जायगा।[2]"

श्री अहमदशाह बीजक के अपने इंगलिश अनुवाद की भूमिका में बीजक के विषय में लिखते हैं—"This collection of hymns in various metres contains the most authoritative record of Kabir's teaching, अर्थात—यह विविध प्रकार के छन्दों का संकलन बीजक कबीर के उपदेशों का सर्वोच्च प्रामाणिक ग्रन्थ है।

---

2. कबीर वाङ्मय उपोद्घात, पृष्ठ 8, 9।

आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व भी बीजक की प्रामाणिकता के विषय में एक लम्बा पद लिखा गया था जिसे रीवां नरेश (वि० सं० 1870-1911) ने अपनी बीजक टीका में उद्धृत किया है। उसके कुछ पद लें—

सन्तो बीजक मत परमाना।
कैयक खोजी खोजि थके कोइ बिरलाजन पहिचाना ।।
बीजक मत कोइ बिरला जानै भूलि परै अभिमानी ।।

श्री रामरहस साहेब (ईसा 1725-1809) ने लिखा है—

वचन बसावहु पारखी, बीजक है सो नाम।
अक्षर अक्षर गुरु से लखो, संशय मेटहु तमाम ।।

(पंचग्रन्थी, टकसार 322)

सद्गुरु कबीर का प्रामाणिक वाङ्मय बीजक अत्यन्त महत्वपूर्ण, सारगर्भित एवं गहन-गम्भीर चिन्तन है। हम उसमें जितना डूबते हैं उतने ही नये-नये रत्न पाते हैं।

सातवां अध्याय : वेद-किताब

कुछ लोग कहते हैं कि कबीर ने वेद-किताब को नहीं माना है और कुछ लोग कहते हैं कि वे वेदों के पक्षधर थे। इन दोनों कथनों में अतिशयोक्तियाँ हैं। लोग वेद तथा किताब (कुरान-बाइविल आदि) को लेकर कठहुज्जती करते थे। हिन्दू कहते थे कि वेद ईश्वर के वचन हैं। मुसलमान कहते थे कुरान ईश्वर की वाणी है। इसी तरह अन्य लोग भी। हिन्दू कहते थे वर्ण व्यवस्था, जाति-पांति, छुआछूत, भेदभाव वेद-समर्थित हैं। जो वेद के कथनानुसार चलेगा, वही स्वर्ग या कल्याण का अधिकारी है। वेदों को न मानने वाले नास्तिक हैं। इसी प्रकार मुसलमान अपनी उल्टी-सीधी बातें कुरान से जोड़कर कुरान न मानने वालों को बे-दीन तथा नरकगामी घोषित कर रहे थे। मानवतावादी स्वतन्त्रचेता कबीर इन दांभिक घुड़कियों से डरने वाले नहीं थे। वे पुरोहितों के इन धमकियों से जनता को भी छुड़ाने वाले थे। इसलिए उन्होंने कहा कि वेद-किताब का अर्थ यदि यही है, तो वे झूठे के बाना हैं—"नौधा वेद-कितेब है झूठे का बाना (शब्द 113)।" अथवा "वेद-कितेब दोउ फंद पसारा, तेहि फंदे परु आप बिचारा (शब्द 32)।"

कबीर साहेब को हिन्दू-मुसलिम मतों के पुरोहितों-द्वारा नास्तिक-काफर कहे जाने का डर नहीं था। कबीर-जैसे तार्किक चिंतक किसी किताब को स्वयंभू एवं काल्पनिक ईश्वर की उपज नहीं मान सकते थे। वे आँख मूंदकर 'कागज की लेखी' मानने को तैयार नहीं थे, किन्तु विवेकसम्मत 'आंखिन की देखी' मानने वाले थे। वे धर्मग्रन्थों का भाव-विह्वल होकर पाठ करने वाले नहीं थे, किन्तु हर बात की छानबीन एवं चीर-फाड़ करने वाले कुशल सर्जन थे। वे आँख मूंदकर कहीं कुछ मानने वाले नहीं थे, किन्तु कहीं से भी उन्हें सत्य स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं था।

कबीर साहेब की प्रामाणिक रचना बीजक तथा उनके नाम से प्रचलित अन्य वाणियों को पढ़-जाने से इतना साफ हो जाता है कि वे मुसलमानों की मान्यताओं एवं उनके कुरान आदि के विषय में ज्ञान रखते थे। परन्तु हिन्दुओं के वेद, वैदिक तथा पौराणिक साहित्य में उनकी गहरी पैठ थी तथा हिन्दू-संस्कारों से वे पूर्ण ओतप्रोत थे। भले ही वे उनकी गलत बातों को नहीं मानते थे। अहमदशाह ने बीजक के अपने इंगलिश अनुवाद की भूमिका में लिखा है—

The study of the Bijak certainly leaves a fixed impression that the basis of his mental equipment was Hindu. His apparent acquaintance with Mohammedan belief, customs and phraseology might easily be purely external and acquired. But with his Hinduism the case is entirely different. His mind is steeped in Hindu thought and mythology, and his mother tongue is Hindi.

अर्थात—"बीजक का अध्ययन निश्चित रूप से एक गहरा प्रभाव उत्पन्न करता है कि उनके मानसिक-रुझान का आधार हिन्दू था। मुसलमानी विश्वास, आचार तथा वर्णन शैली से उनका प्रत्यक्ष परिचय पूर्ण रूप से बाहरी और अर्जित था। परन्तु उनकी स्थिति हिन्दुत्व के साथ पूर्णतः भिन्न है। उनका मस्तिष्क हिन्दू-विचारों तथा मान्यताओं से ओतप्रोत है तथा उनकी मातृभाषा हिन्दी है।"

कबीर साहेब के बीजक को पढ़ने से लगता है कि वे मुसलमानों की बातों को दूर से देखकर कहते हैं, परन्तु हिन्दुओं की बातों को उनमें डूबकर कहते हैं। वे सर्वत्र राम-रहीम की एकता की बातें करते हैं, किन्तु अधिकृत रूप में राम शब्द का प्रयोग करते हैं। 'कबीर साहेब की वेद, वैदिक तथा पौराणिक साहित्य में गहरी पैठ थी' यह बात ऊपर कही गयी है। इसे पढ़कर

बहुत-से विद्वान चौक पड़ेंगे। क्योंकि अधिकतम विद्वानों को यह भ्रम है कि कबीर अनुभव में तो बढ़े-चढ़े थे, किन्तु पढ़े-लिखे नहीं थे, इसलिए उनकी शास्त्रों में पैठ नहीं थी। इस बात को सिद्ध करने के लिए कबीर साहेब की यह साखी ठोंक दी जाती है—मसि कागद छूवों नहीं, कलम गहौं नहिं हाथ। चारिउ युग का महातम, कबीर मुखहि जनाई बात। (साखी 187)

अपनी बातों को बताने के लिए कलम, कागज एवं स्याही छूने की कोई आवश्यकता नहीं। पुराने जमाने में यह बात सहज थी कि गुरुजन बोलते थे और शिष्यजन लिख लेते थे। कबीर साहेब ने बीजक में "ज्ञान-चौंतीसा" नाम का एक प्रकरण कहा है जिसमें चौंतीस अक्षरों पर सुन्दर एवं गहरा उपदेश है। कबीर साहेब शास्त्री एवं व्याकरणाचार्य भले ही नहीं रहे हों, किन्तु उनको तात्कालिक भाषा का इतना ज्ञान अवश्य रहा होगा जिससे वे शास्त्रों का मनन कर सकते रहे हों। या यह हो सकता है कि उनके पास ऐसे पण्डित रहे हों जो वेद-शास्त्रों, महाकाव्यों एवं पुराणों के विषयों की चर्चा उनके सामने करते हों। इतना साफ है कि जो व्यक्ति, वेद, उपनिषद्, स्मृति, महाकाव्यों, पुराणादि का ज्ञान न रखता हो, वह सम्पूर्ण बीजक का अर्थ नहीं समझ सकता।

कबीर साहेब जानते थे कि वेद-किताबों में काफी अच्छी-अच्छी बातें हैं। अतएव वे कहते हैं—"वेदों-किताबों को कौन झूठा कहता है? झूठा वह है जो उनमें आयी हुई बातों पर विचार नहीं करता और सब कुछ ईश्वरीय वाणी होने का दावा करता है।"

यथा—

वेद कितेब कहा किन झूठा, झूठा जो न बिचारे ॥

(बीजक, शब्द 97)

"हे भाई सातवाँ श्रेष्ठ जीव है। यदि तुम उसके महत्व को समझते हो तो मैं इसे लोक तथा वेद से प्रमाणित कर सकता हूँ।"

सतयाँ सयान जो जानहु भाई । लोक वेद मों देऊँ देखाई ।।

(बीजक, रमैनी 37)

"जिस सर्वोच्च स्थिति के लिए श्रेष्ठ मुनिजन तप करते हैं । और जिसके गुण गाते वेद थकते हैं मैं उसी की शिक्षा देता हूँ, किन्तु कोई विश्वास नहीं करता है ।"

जाके मुनिवर तप करे, वेद थके गुण गाय ।
सोई देऊँ सिखापना, कोई नहीं पतियाय ।।

(बीजक, साखी 123)

जैसे अंधे के लिए दर्पण बेकार है, वैसे विवेकहीनों के लिए वेद-पुराण बेकार हैं । करछुली व्यजनों में फिरती है, परन्तु वह उनके उत्तम रसों को क्या जाने । जैसे मूर्ख गधा चन्दन के बोझा को अपने पीठ पर लादकर भी उसकी सुगंधी के महत्व को नहीं जानता, वैसे कितने लोग वेद शास्त्र एवं पुराणों का बोझा लादकर भी तथा उनका निरन्तर अध्ययन-मनन करके भी न उनके सार तत्व को समझते हैं और न जीवन में उनका आचरण कर पाते हैं । सद्गुरु कबीर कहते हैं कि लोग परम तत्व को आसमान में खोजते हैं, वह स्वरूप बोध नहीं मिलता जिससे इनका सारा जड़-अभिमान दूर हो जाय ।"

यथा—

अन्ध सो दर्पण वेद पुराना । दर्बी कहा महारस जाना ।।
जस खर चन्दन लादेउ भारा । परिमल बास न जानु गँवारा ।।
कहँहि कबीर खोजे असमाना । सो न मिला जो जाय अभिमाना ।।

(बीजक, रमैनी 32)

सद्गुरु कहते हैं—"है कोई श्रेष्ठ ज्ञानी, जो जगत से लौटकर वेद को समझने की चेष्टा करे । पानी में पावक जल रहा है, किन्तु अन्धे को तो कुछ सूझता नहीं । अर्थात शीतल आत्मा राम में विकारों की आग लगी है ।"

है कोई गुरु ज्ञानी। जगत उलटि बेद बूझै ।।
पानी में पावक बरै। अन्धहिं आँखि न सूझै ।।

(बीजक, शब्द 111)

उपर्युक्त पंक्तियों में वेद-शास्त्रों के लिए श्रद्धा के पूर्ण भाव हैं। अतएव वे वेद, शास्त्र एवं कुरान-पुरान को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं, उनमें आयी हुई अच्छी बातों को सहर्ष स्वीकारते हैं; परन्तु यदि कोई उन्हें ईश्वर-वाणी कहकर उनकी उल्टी-सीधी सभी बातों को थोपना चाहे और वेद-शास्त्रों एवं किताबों की आड़ में अपना कल्पित भ्रम लादना चाहे, तो इसे वे मानने के लिए तैयार नहीं। सार्वभौमिक सत्य के पथ में जो कुछ आड़े आये, उन्हें वे निर्भयता पूर्वक त्यागने के लिए तैयार हैं चाहे वह कुछ भी हो।

आठवां अध्याय : ब्राह्मण और पंडित

कहा जाता है कि कबीर साहेब ने ब्राह्मण और पंडितों को बहुत लताड़ा है। उन्हें बड़ी खरी-खोटी सुनायी है। यह कहना सच है। सचमुच कबीर साहेब ने ब्राह्मणों, पंडितों, मुल्लाओं आदि को आड़े हाथों लिया है। परन्तु यह न भूलना चाहिए कि जिन संत एवं गुरु को उन्होंने विनयावनत होकर स्वीकारा है, उन्हें भी कहने में कसर नहीं रखी है। संत-गुरु बड़ा ऊँचा पद है; परन्तु उनके नाम एवं वेष का आधार लेकर कोई उनका दुरुपयोग करे तो सत्य-शोधक ऐसे लोगों को फटकारे बिना रह नहीं सकता। वे साधु-वेष-धारियों, विरक्त गुरुओं एवं महन्तों को फटकारते हुए कहते हैं—

ऐसा योग न देखा भाई। भूला फिरै लिये गफिलाई ॥
महादेव को पन्थ चलावै। ऐसो बड़ो महन्त कहावै ॥
हाट बजारे लावै तारी। ऊच्चा सिद्ध माया प्यारी ॥
कब दत्ते मावासी तोरी। कब शुकदेव तोपची जोरी ॥
नारद कब बंदूक चलाया। व्यासदेव कब बम्ब बजाया ॥
करहिं लराई मति के मंदा। ई अतीत का तरकसबन्दा ॥
भये विरक्त लोभ मन ठाना। सोना पहिरि लजावैं बाना ॥
घोरा घोरी कीन्ह बटोरा। गांव पाय जस चले करोरा ॥
साखी—सुन्दरी न सोहै, सनकादिक के साथ।
कबहुँक दाग लगावै, कारी हाँड़ी हाथ ॥

(बीजक, रमैनी 69)

सन्तो देखत जग बौराना।
साँच कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना ॥
नेमी देखा धर्मी देखा, प्रात करे अस्नाना।
आतम मारि पषाणहि पूजे, उनमें किछउ न ज्ञाना।
बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़ें कितेब कुराना ॥
कै मुरीद तदबीर बतावें, उनमें उहै जो ज्ञाना ॥
आसन मारि डिम्भ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना।
पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ गर्भ भुलाना ॥
टोपी पहिरे माला पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
साखी शब्दै गावत भूले, आतम खबरि न जाना ॥
हिन्दू कहैं मोहिं राम पियारा, तुरुक कहैं रहिमाना।
आपुस में दोउ लरि-लरि मूये, मर्म न काहू जाना ॥
घर-घर मन्तर देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना।
गुरु सहित शिष्य सब बूड़े, अन्त काल पछिताना ॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, ई सब भरम भुलाना।
केतिक कहौं कहा नहिं माने, सहजे सहज समाना ॥
(बीजक, शब्द 4)

ऐसे सत्य-शोधक ब्राह्मण तथा पंडितों को कुछ कहते हैं तो स्वाभाविक है। ब्राह्मण और पंडित बड़े ऊँचे भाव के शब्द हैं।

कहा जाता है कि पुराकाल में आर्य लोग अग्नि के चारों ओर बैठकर उसमें आहार भून एवं पकाकर खाते थे तथा अग्नि में हवन आदि करके उसकी उपासना करते थे। वे अग्नि को ब्रह्म कहते थे, क्योंकि अग्नि थोड़ा जलाने पर धीरे-धीरे ज्यादा बढ़ जाती है। 'बृहत्वाद् ब्रह्म' अग्नि बढ़ने से वह ब्रह्म कहलायी और उसकी उपासना करने के कारण आर्य लोग ब्राह्मण कहलाये। परन्तु आगे चलकर ब्रह्म शब्द आत्मा-परमात्मा-परक हो गया। इसलिए आत्मा को ब्रह्म तथा आत्म-परायण को ब्राह्मण कहा जाने लगा। उपनिषदों को

देखा जाय तो ब्रह्मज्ञानी ही ब्राह्मण हैं, और ब्रह्मज्ञानी का अर्थ है चेतननिष्ठ, आत्मपरायण। इसलिए दार्शनिक विचारों में अंतर रखते हुए भी संसार के सभी अध्यात्म-परायण पुरुष याज्ञवल्क्य, सनत्कुमार, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, कबीर, नानक, रैदास, पल्टू, दयानन्द, विवेकानन्द आदि महापुरुष सच्चे अर्थों में ब्राह्मण हैं। इसीलिए संस्कृत वाङ्मय में कहा गया 'ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः'।

इसी प्रकार पंडित शब्द महत्वपूर्ण अर्थ रखता है। सत्यासत्य विवेकिनी बुद्धि पंडा है और जिसकी बुद्धि पंडा है वह पंडित है।

'गो' कहते हैं इंद्रियों को और 'सांई' का अर्थ है विजयी या स्वामी। इस प्रकार इंद्रियजित को गोसाईं कहते हैं। परन्तु आजकल गोसाईं नाम की एक रूढ़ जाति है जिसका इंद्रियजित होने से कोई मतलब ही नहीं है। इसी प्रकार यह सर्वविदित है कि भारतवर्ष में ब्राह्मण नाम की एक रूढ़ जाति है जिससे ब्रह्मज्ञान और आत्मा-परमात्मा-परायण होने से कोई मतलब नहीं है। ऐसा होने पर भी कोई केवल ब्राह्मण नाम के आधार पर अपने आप को सर्वोपरि मनवाने की इच्छा रखे तो सही आदमी इसकी आलोचना करेगा ही। करुणामूर्ति कबीर साहेब के मन में जीव मात्र के प्रति करुणा है। वैसे वे ब्राह्मणों के प्रति भी करुणापूर्ण हैं। कबीर साहेब यह तो कहने वाले नहीं थे कि ब्राह्मणों को पूजो चाहे वे शीलभ्रष्ट हों और शूद्रों को मत पूजो चाहे वे सद्गुण-संपन्न हों। वे तो निष्पक्ष मानवतावादी संत थे। उन्होंने ब्राह्मणों को अपने महान ग्रंथ बीजक में यत्र-तत्र कड़वे-मीठे घोल पिलाये हैं, उनके हित में सीख दी है और 'विप्रमतीसी' नाम का एक प्रकरण ही उनके हित में कह डाला है। मानव ही नहीं, जीव मात्र पर दया करने वाले संत कबीर के मन में ब्राह्मण नाम से विदित वर्ग के प्रति घृणा कैसे हो सकती थी। उनको तो यही खटकता था कि नाम उच्च भाव वाला ब्राह्मण और अहंकार उससे भी ऊँचा, किन्तु करनी अत्यन्त दयनीय ! इससे अधिक पतन क्या हो सकता है। ऐसे वर्ग को संत नहीं फटकारेंगे तो उसे कहां सीख मिलेगी ? फटकारा भी उसी

को जाता है जिसे अपना माना जाता है। सद्गुरु कबीर ने ब्राह्मणों को अपना मानकर ही उन्हें फटकारा है। इस फटकार के मूल में घृणा नहीं, किन्तु शुद्ध ममता एवं उनके कल्याण की भावना है।

कबीर साहेब पंडितों की नगरी में ही रहते थे और देखते थे कि अधिकतम पण्डितों की दशा सत्यसत्य-विवेकिनी बुद्धि से दूर रूढ़िग्रस्तता, हठवादिता एवं अहंकार से पूर्ण है। उन्होंने कहा—

पण्डित भूले पढ़ि गुनि वेदा। आप अपन पौ जानु न भेदा॥
(बीजक, रमैनी 35)

बैठा पण्डित पढ़े पुरान। बिनु देखे का करत बखान॥
(बीजक, शब्द 101)

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पण्डित हुआ न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय॥
(साखी ग्रन्थ)

कबीर साहेब ने काशी में देखा था कि कैसे-कैसे पण्डित होते हैं। पण्डित लोग अपने ऊपर एक वर्ग की परिछाईं पड़ जाने मात्र से सचैल स्नान करते हैं। इनमें प्रेम तो है नहीं। वस्तुतः प्रेम का पढ़ने वाला ही पण्डित है। विवेकी ही मानवता का प्रेमी हो सकता है।

इसके अतिरिक्त कबीर साहेब ने विवेकी पण्डितों को भी देखा था। इस-लिए वे पण्डित के प्रति आस्थावान थे। वे जानते थे कि कितने ही पण्डित केवल नाम के पण्डित नहीं हैं, किन्तु उनमें समीक्षात्मक एवं अन्वीक्षकी बुद्धि है। वे यदि ध्यान दें, तो सत्यासत्य का विवेक कर सकते हैं। इसी आशा-विश्वास से उन्होंने कहा—

कहहिं कबीर हम जात पुकारा, पंडित होय सो लेय बिचारा।
(बीजक, शब्द 53)

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, बूझो पण्डित ज्ञानी ।

(बीजक, शब्द 94)

पण्डित सो बोलिये हितकारी । मूरख सो रहिये झखमारी ।।

(बीजक, रमैनी 70)

बुझ बुझ पण्डित मन चितलाय..................... ।

(बीजक, शब्द 51)

कबीर साहेब ने बीजक शब्द प्रकरण में एक दर्जन शब्द पण्डितों को ही सम्बोधित कर कह डाला है और बीजक भर में यत्र-तत्र पण्डितों को संबोधित किया है। वे जानते हैं कि असली पण्डित समझने की क्षमता रखता है। वह मेरी बातों को ठीक से समझ सकता है। वह समझकर उसका आचरण करे तो उसका तथा जगत का ज्यादा कल्याण होगा।

इस प्रकार कबीर साहेब द्वारा ब्राह्मण, पण्डित, मुल्ला, सन्त, गुरु आदि की जो आलोचनाएं उनकी वाणियों में मुखरित हुई हैं, उनके मूल में घृणा नहीं, किन्तु सत्यदृष्टि समझना चाहिए। कबीर जैसे सन्त शिरोमणि के हृदय में किसी के लिए घृणा का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। कबीर साहेब समाज के कूड़ा-कचड़ा को बुहारकर उसे एकदम शुद्ध करना चाहते थे; और जो समाज के उच्चादर्श हैं उनमें तो वे किंचित भी मल नहीं देखना चाहते थे।

नवां अध्याय : कबीर साहेब के उपदेश

कुसंग-त्याग और साधु-संग ग्रहण

आदमी कुसंग में पड़कर पतित होता है। केला के साथ में यदि बेर के पेड़ लग जायं तो बेर के काँटे से केले के पत्ते चींधी-चींधी करके फटते हैं इसी प्रकार बुरों की संगति से मनुष्य दुखी होता है। अतएव सदैव साधु की संगति करो। वह तुम्हारे मन की पीड़ा को हरेगी और दुष्ट की संगति तो ओछी है। इसके फल में रात-दिन केवल उपद्रव है। अच्छी संगत से सुख मिलता है और बुरी संगत से दुख। इसलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं कि वहाँ जाना चाहिए जहाँ अच्छी संगत हो। हे मरजीया-गोताखोर ! ज्ञानामृत पी। क्या पाताल में धंसकर मरता है। गुरुकृपा तथा संत-संगत से कल्याण-द्वार पर आ जा।

मारी मरै कुसंग की, केरा साथे बेर।
वै हालैं वै चीधरैं, विधिना संग निबेर।।
संगति कीजै साधु की, हरै और की ब्याधि।
ओछी संगति कूर की, आठों पहर उपाधि।।
संगत से सुख उपजे, कुसंगति से दुख होय।
कहँहि कबीर तहां जाइये, जहां अपनी संगति होय।।
ये मरजीवा अमृत पीवा, क्या धँसि मरसि पतार।
गुरु की दया साधु को संगति, निकरि आव यहि द्वार।।

(बीजक, साखी-242, 207, 208, 304)

कबीर संगत साधु की, ज्यों गन्धी की बास।
जो कुछ गन्धी दे नहीं, तो भी वास सुवास।।
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
कबीर संगत साधु की, कटै कोटि अपराध।।

(कबीर अमृतवाणी, संगति को अंग, साखी-4, 7)

कथनी और करनी की एकता

जीवन तभी सुधरता जब है हमारा जानना, मानना और करना एक हो जाय। जानना ज्ञान है, मानना भक्ति हैं तथा करना कर्म है। तीनों के समन्वय से कल्याण है। हम जानते कुछ हैं, मानते कुछ हैं और करते कुछ हैं; इसलिए जीवन असंतुलित है। जब हमारा जानना, मानना तथा करना एक सिधाई में हो जाता है, तब हमें पूर्ण शांति का अनुभव होता है इसी को दूसरे शब्दों में कहते हैं कथनी और करनी की एकता। सद्‌गुरु कहते हैं—

कहहिं कबीर पद बूझै सोई, मुख हृदया जाके एकै होई।

(बीजक, शब्द 79)

जस कथनी तस करनी, जस चुम्बक तस ज्ञान।
कहहिं कबीर चुम्बक बिना, क्यों जीते संग्राम॥
जैसी कहै करै जो तैसी, राग द्वेष निरुवारे।
तामें घटै बढ़ै रतियो नहिं, यहि विधि आपु सँवारे॥
साखी कहै गहै नहिं, चाल चलि नहिं जाय।
सलिल धार नदिया बहै, पाँव कहाँ ठहराय॥
कहन्ता तो बहुते मिला, गहन्ता मिला न कोय।
सो कहन्ता बहि जानदे, जो न गहन्ता होय॥

(बीजक, साखी-314, 257, 79, 80)

वाणी-संयम

प्राणि-जगत में मानव एक ऐसा प्राणी है जिसे प्रकृति-द्वारा विकसित वाणी मिली है। मानव अपने भावों को वाणी में अधिकतम व्यक्त कर सकता है तथा दूसरे मानव की वाणी को सुनकर उससे लाभ ले सकता है। परन्तु वाणी जैसे काम की चीज है, वैसे उसका दुरुपयोग करने से वह मानव की हानि करने वाली हो जाती है। इसलिए सद्‌गुरु सावधान करते हैं—

बोलना कासो बोलिये रे भाई। बोलत ही सब तत्व नशाई ॥
बोलत बोलत बाढ़ विकारा। सो बोलिये जो पड़े विचारा ॥
मिलहिं सन्त बचन दुइ कहिये। मिलहिं असंत मौन होय रहिये ॥
पण्डित सो बोलिये हितकारी। मूरख सो रहिये झखमारी ॥
कहहिं कबीर अर्ध घट डोलै। पूरा होय विचार लै बोलै ॥
(बीजक, रमैनी-70)

जिभ्या केरे बन्द दे, बहु बोलन निरुवार।
पारखी से संग करु, गुरुमुख शब्द विचार ॥
जाके जिभ्या बन्द नहिं, हृदया नाहीं साँच।
ताके संग न लागिये, घाले बटिया माँझ ॥
बोल तो अमोल है, जो कोइ बोलै जान।
हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आन ॥
साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहि विचार।
हतै पराई आतमा, जीभ बांधि तलवार ॥
मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर।
श्रवण द्वार होय संचरे, सालै सकल शरीर ॥
(बीजक, साखी-82, 83, 276, 299, 301)

नारी का आदर

कुछ विद्वानों को एक महाभ्रम है कि कबीर ने जिस अपनी विशाल दृष्टि से ब्राह्मण और शूद्र तथा हिन्दू और मूसलमान एवं पूरे मानव को समान देखा, उसी विशाल दृष्टि से वे नर तथा नारी को एक समान नहीं देख सके। ऐसे विद्वान लोग निश्चित है बीजक के बाहर की वाणियों में कुछ इस ढंग की पंक्तियों को देखकर ऐसी धारणा बना लेते हैं जिनमें वैराग्यवृत्ति से नारीदेह पर दोष-दर्शन किया गया है। ऐसी वाणियों की उनकी होने में प्रामाणिकता

में भी सन्देह है। किन्तु जो सद्गुरु कबीर का प्रामाणिक ग्रन्थ बीजक है उसमें ऐसी आलोचना का कोई प्रश्न नहीं है। बीजक में नर और नारी की समानता में कहा गया है—

ऐसो भरम बिगुर्चन भारी।
वेद ·किते‌ब दीन औ दोजख, को पुरुषा को नारी ॥
माटी का घट साज बना है, नादे बिन्द समाना।
घट बिनसे क्या नाम धरहुगे, अहमक खोज भुलाना ॥
(बीजक, शब्द 75)

एकै पुरुष एक है नारी। ताकर करहु विचारा ॥
(बीजक, शब्द 5)

आधे बसे पुरुष, आधे बसे जोय।
(बीजक, शब्द 50)

जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा।
(बीजक, शब्द 97)

पण्डित देखहु हृदय विचारी, को पुरुषा को नारी ॥
सहज समाना घट घट बोले, वाके चरित अनूपा।
वाको नाम काह कहि लीजै, न वाके वर्ण न रूपा ॥
(बीजक, शब्द 48)

इत्यादि पंक्तियों से आप समझ सकते हैं कि कबीर साहेब के मन में नर-नारी समानता का कितना ज्वलंत दृष्टिकोण है।

माया

कबीर साहेब की दृष्टि में मन का मोह ही माया है। जीव जहाँ-जहाँ फँसकर अपने स्वरूप को भूल जाता है वही माया है। इसीलिए उन्होंने कहा—"मैंने माया को महान ठगिनी समझा है। वह त्रिगुणी फाँस हाथ में लेकर घूमती है और मीठी वाणी बोलकर फँसाती है। यह माया केशव के घर में कमला बन

कर बैठी है और शिव के भवन में भवानी बनकर बैठी है। यह माया पंडा के घर में मूर्ति बनकर तथा तीर्थ में पानी बनकर छल रही है। योगी के योगिनी एवं योगसिद्धि, राजा के घर में रानी बन बैठी है। यह माया किसी घर में हीरा तथा किसी के घर में कानी कौड़ी बनकर छल रही है। यह भक्तों के घर में भक्तिन या भक्ति बनकर और ब्रह्मा के घर में ब्रह्मानी बनकर बैठी है। कबीर साहेब कहते हैं कि इस माया की कहानी अपरंपार है।

माया महा ठगिनि हम जानी।
त्रिगुणी फाँस लिये कर डोले, बोले मधुरी बानी।
केशव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी।
पण्डा के मूरति ह्वै बैठी, तीरथ हुँ में पानी।
योगी के योगिनि ह्वै बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू के कौड़ी कानी।
भक्ता के भक्तिनि ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, ई सब अकथ कहानी।

कबीर देव कहते हैं—हे राम ! तेरी माया झगड़ा मचाती है। उसकी गति-मति समझ नहीं पड़ती। वह सुर, नर तथा मुनियों को भी नचा रही है। हे सेमल ! तेरी डगालियों के बढ़ जाने से क्या होता है। तेरे फूल कहने भर के बड़े अच्छे हैं, किन्तु वे हैं गंधरहित। कितने पक्षी उन फलों को खाने के लिए आशा किये बैठे हैं किन्तु देखते-देखते जब सेमल के फल पककर फूटते हैं तब उनमें केवल नीरस भूई उड़ती है, संसार के प्राणी-पदार्थों की चमक-दमक भी इसी तरह है जो देखते - देखते विलीन हो जाते हैं और उनके सम्बन्ध में केवल राग-द्वेष-जनित चंचलता मिलती है। हे खजूर ! तेरी क्या प्रशंसा की जाय, क्योंकि तेरे फल सर्वसाधारण को नहीं मिलते, और जब गरमी ऋतु आती है तब तेरी छाया पथिक के काम नहीं आती है। माया की दशा यही है। इससे किसी को लाभ नहीं होता। कनक-कामिनी के मोह में डूबे हुए लोग अपने आप को बड़ा चतुर मानते हैं और दूसरों को भी अहंकार पूर्वक उसी की सीख देते हैं। कबीर साहेब कहते हैं हे संतो ! सुनो, माया का मोह छोड़कर राम में प्रेम करो।

कबीर साहेब का राम चरण वाला नहीं है; अतएव 'राम चरण' लक्षणा मात्र है। अभिप्राय है अपने आत्मा राम में लीन होओ। जीव ही राम है। इसके मन का मोह माया है। उसे चाहिए कि माया-मोह छोड़कर स्वस्वरूप में प्रेम करे।

राम तेरी माया दुन्द मचावै।
गति मति वाकी समुझि परै नहिं, सुर नर मुनिहि नचावै॥
क्या सेमर तेरि शाखा बढ़ाये, फूल अनूपम बानी।
केतेक चातृक लागि रहे हैं, देखत रुवा उड़ानी॥
काह खजूर बड़ाई तेरी, फल कोई नहिं पावै।
ग्रीष्म ऋतु जब आनि तुलानी, तेरी छाया काम न आवै॥
आपन चतुर और को सिखवै, कनक कामिनी सयानी।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, राम चरण ऋतु मानी॥

(बीजक, शब्द 13)

बीजक पाठ-फल में कहा गया है—

अस्ति आत्मा राम है, मन माया कृत नास्ति।
याकी पारख लहै यथा, बीजक गुरु मुख आस्ति॥

अर्थात आत्मा राम सत्य है और मन माया की रचना नाशवान है। इसकी यथार्थ परख बीजक की गुरुमुख वाणी से करना चाहिए।

अपने आप की भूल

जीव अविद्यावश अपनेपन को, अपने स्वत्व को स्वयं भूला हुआ है। जैसे कांच के मंदिर में कुत्ता अपने प्रतिबिंब को देखकर भूल जाता है, वह समझ लेता है कि यह दूसरा कुत्ता है और उसे अपना प्रतिद्वंदी मानकर भूंकते-भूंकते मर जाता है। जैसे एक सिंह कूयें के जल में अपनी परिछाईं को दूसरा सिंह मानकर उसे मारने के लिए कूयें में कूदकर मर गया। जैसे स्फटिक पत्थर में

हाथी अपने प्रतिबिम्ब को प्रतिद्वन्द्वी हाथी मानकर और उसमें माथा मार-मार कर मर गया; वैसे जीव अपने कल्पित भास-अध्यास में सर मार-मार कर मरता है। बंदर चने के लोभ से सुराही में हाथ डालकर चने को मुट्ठी से पकड़ता है और मुट्ठी सुराही से न निकलने के कारण कलंदर द्वारा पकड़ा जाता है। वैसे जीव विषयों के मोह में अपने को बाँधता है। कबीर साहेब कहते हैं हे ललनी के सुवना ! तेरे को किसने पकड़ रखा है ? अरे ! तू ही लाल मिर्ची के लोभ-वश नलिका-यंत्र में अपने आप को फँसा लिया है।

आपन पौ आपुहि बिसर्यो ।
जैसे श्वान काँच मंदिर में, भरमित भूसि मर्यो ।
ज्यों केहरि बपु निरखि कूपजल, प्रतिमा देखि पर्यो ।
वैसे ही गज फटिक शिला में, दशनन आनि अर्यो ।
मर्कट मूठि स्वाद नहि बिहुरे, घर घर रटत फिर्यो ।
कहहिं कबीर ललनी के सुवना, तोहि कवने पकर्यो ।

(बीजक, शब्द 76)

जड़ और चेतन दो ही तत्व हैं। चेतन अपने स्वरूप को भूलकर जड़ में उलझ जाता है। इस भूल के मूल में विषयों का प्रलोभन है। इसे त्यागकर हमें अपने स्वरूप में स्थित होना चाहिए।

संसार की नश्वरता

कबीर साहेब एक राजा को जब ज्ञान की बातें बताते थे, तब वह कहता था महाराज, मुझे यह सब सुनने की फुरसत नहीं है। हमें परिवार के प्यार और राज के सम्हालने से ही फुरसत नहीं है। एक दिन कबीर साहेब ने सुना कि वह राजा अपनी नवजवानी में ही मर गया है। कबीर साहेब उसका लक्ष्य करके कहने लगे—हे मीत ! अब तुम अपने स्वजनों एवं राजकाज को छोड़ कर अकेले कहाँ चल दिये ? उठो न, घर की चिंता करो। खीर, खांड़, घृत

आदि खा-पीकर शरीर को बड़ा चिकना बनाया था। उस तेरे सुनहले शरीर को बाहर डाल दिया गया है। आदमी जिस सिर पर रच-रचकर पाग बाँधता है उस रत्न - सिर को कौआ फोड़ते हैं। मनुष्य की हड्डी जंगल की लकड़ी की तरह और बाल घास के गट्ठे की तरह जलते हैं। न आते ये साथ आये हैं और न जाते समय साथ जायेंगे। फिर फौज, हाथी आदि बाँधने से क्या हुआ! यह जीव माया का रस इच्छानुसार भोगने नहीं पाता, और बीच में ही यम विल्ली बनकर इस मनुष्य रूप चूहे को दौड़कर दबोच लेती है। कबीर साहेब कहते हैं कि मनुष्य आज भी नहीं सावधान होता, जबकि यम का मुगदर इसके सिर में लगने वाला है।" यथा —

अब कहाँ चलेउ अकेले मीता, उठहु न करहु घरहु की चिन्ता।
खीर खाँड़ घृत पिण्ड सँवारा, सो तन लै बाहर कै डारा।
जो शिर रचि-रचि बाँधहु पागा, सो शिर रतन बिडारत कागा।
हाड़ जरे जस जंगल लकड़ी, केश जरे जस घास की पूली।
आवत संग न जात सँगाती, काह भये दल बाँधल हाथी।
माया के रस लेइ न पाया, अन्तर यम बिलारि होइ धाया।
कहहिं कबीर नर अजहुँ न जागा, यम का मुगदर माँझ शिर लागा।

(बीजक, शब्द 99)

राम नाम भजु राम नाम भजु, चेति देखु मन माहीं हो।
लक्ष करोरि जोरि धन गाड़े, चलत डोलावत बाँही हो।
दादा बाबा औ परपाजा, जिन्हके यह भुइँ भाँड़े हो।
आँधर भये हियहु की फूटी, तिन्ह काहे सब छाँड़े हो।
ई संसार असार को धन्धा, अन्त काल कोइ नाहीं हो।
उपजत बिनसत बार न लागे, ज्यों बादर की छाँहीं हो।
नाता - गोता कुल-कुटुम्ब सब, इन्ह कर कौन बड़ाई हो।
कहहिं कबीर एक राम भजे बिनु, बूड़ी सब चतुराई हो।

(बीजक, कहरा 5)

चलहु का टेढ़ो-टेढ़ो-टेढ़ो ।
दशहूँ द्वार नरक भरि बूड़े, तूँ गन्धी को बेड़ो ।
फूटे नैन हृदय नहिं सूझै, मति एकौ नहिं जानी ।
काम क्रोध तृष्णा के माते, बूड़ि मुये बिनु पानी ।
जो जारे तन भस्म होय धुरि, गाड़े किरमिटी खाई ।
सीकर श्वान काग का भोजन, तन की इहै बड़ाई ।
चेति न देखु मुग्ध नर बौरे, तोहि ते काल न दूरी ।
कोटिन यतन करो यह तन की, अन्त अवस्था धूरी ।
बालू के घरवा में बैठे, चेतत नाहिं अयाना ।
कहहिं कबीर एक राम भजे बिनु, बूड़े बहुत सयाना ।
(बीजक, शब्द 72)

फिरहु का फूले-फूले-फूले ।
जब दश मास उर्ध्व मुख होते, सो दिन काहेक भूले ।
ज्यों माखी सहते नहीं बिहुरे, सोचि-सोचि धन कीन्हा ।
मुये पीछे लेहु-लेहु करें सब, भूति रहनि कस दीन्हा ।
देहरि लों बर नारि संग है, आगे संग सुहेला ।
मृतक थान लों संग खटोला, फिर पुनि हंस अकेला ।
जारे देह भस्म होय जाई, गाड़े माटी खाई ।
काँचे कुम्भ उदक ज्यों भरिया, तन की इहै बड़ाई ।
राम न रमसि मोह के माते, परेहु काल वश कूवा ।
कहहिं कबीर नर आप बँधायो, ज्यों ललनी भ्रम सूवा ।
(बीजक, शब्द 73)

कबीर गर्व न कीजिये, काल गहे कर केश ।
न जानो कित मारि हैं, क्या घर क्या परदेश ।।
कबीर गर्व न कीजिये, इस जीवन की आस ।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भया पलास ।।
कबीर यह संसार है, जैसा सेमल फूल ।
दिन दस के व्यवहार में, झूठे रंग न भूल ।।

कबीर रसरी पाँव में, कह सोवै सुख चैन ।
साँस नगारा कूँच का, बाजत है दिन रैन ।।
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात ।
देखत ही छिप जायँगे, ज्यों तारा परभात ।।
माटी कहै कुम्हार को, क्यों तू रौंदे मोहिं ।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं रौंदौंगी तोहिं ।।
लकड़ी कहै लुहार को, तू मति जारै मोहिं ।
एक दिन ऐसा होयगा, में जारौंगी तोहिं ।।
पात झरंता देखि के, हँसती कूपलियाँ ।
हम चाले तुम चालिहो, धीरी बापलियां ।।
माली आवत देखि के, कलियाँ करे पुकार ।
फूली फूली चुन लई, काल हमारी बार ।।
चेत सबेरे बावरे, फिर पाछे पछताय ।
तुझको जाना दूर है, कहैं कबीर जगाय ।।

(साखी ग्रन्थ)

पारिवारिक और सामाजिक जीवन पर प्रकाश

कुछ लोग कहते हैं कि कबीर ने केवल उच्च आध्यात्मिक विषयों पर ही प्रकाश डाला है। उन्होंने व्यवहार को नहीं लिया है। किंतु यह धारणा उनकी वाणियों के सम्यक अध्ययन न करने का परिणाम है। वे गृहस्थ, विरक्त एवं जीवन्मुक्त पुरुषों के लिए एक ही साखी में सुन्दर प्रकाश डालते हैं—

हद्द चले सो मानवा, बेहद चले सो साध ।
हद बेहद दोऊ तजै, ताकर मता अगाध ।।

(बीजक, साखी 189)

हद्द गृहस्थी मर्यादा है। जो इसके अनुसार चलता है वह मनुष्य है। बेहद विरक्ति दशा है। जो इसके अनुसार चलता है वह साधु है, और जो हद-बेहद दोनों से ऊपर उठ जाता है, गृहस्थी से तो ऊपर उठा ही, परंतु विरक्ति मार्ग की सांप्रदायिक भावनाओं से भी ऊपर उठ जाता है, वह जीवन्मुक्त है, गुणातीत है। उसका मत अगाध है।

वे शब्द प्रकरण में एक शब्द में कहते हैं—"हे संतो ! यदि बात की जाय तो संसार के लोग मारने दौड़ते हैं। परंतु चुप रहने से कैसे काम बनेगा ? शब्दों पर कोई विचार नहीं करता।

सन्तो बोले ते जग मारे।
अनबोले ते कैसेक बनिहै, शब्दहिं कोइ न बिचारे।
पहले जन्म पुत्र का भयऊ, बाप जन्मिया पाछे।
बाप पूत की एकै नारी, ई अचरज कोई काछे।
हुन्दुर राजा टीका बैठे, विषहर करै खवासी।
श्वान बापुरा धरिन ढाकनो, बिल्ली घर में दासी।
कार दुकार कार करि आगे, बैल करे पटवारी।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, भैंसे न्याव निबेरी।
(बीजक, शब्द 9)

1. "पहले जनम पूत का भयऊ, बाप जन्मिया पाछे" पहले पुत्र जन्म लेता है और पीछे से बाप जन्मता है। किसी के यहाँ बच्चा जन्म लेता है तब लोग यही कहते हैं कि अमुक को पुत्र पैदा हुआ है। यह कोई नहीं कहता कि अमुक के घर में बाप ने जन्म लिया है। जब पुत्र बड़ा होता है और अपनी शादी करता है तथा उसके बच्चे पैदा होते हैं तब वह बाप बनता है। इस प्रकार हर व्यक्ति पहले पुत्र के रूप में जन्मता है और वही बहुत पीछे बाप बनता है। कबीर साहेब कहना चाहते हैं कि यदि संसार का हर पुत्र हर बच्चा अच्छे संस्कारों से संपन्न किया जाय तो वह अच्छा बाप बन सकेगा।

बच्चा मनुष्य का पिता है। हम बच्चों को अच्छे संस्कार दें जिससे समाज के हर क्षेत्र के वयस्क अच्छे बनें।

2. "बाप-पूत की एकै नारी" बाप और पुत्र में ही सारे मानव हैं। रमेश्वर वल्द जगेश्वर। वल्दियत में ही तो सारी पीढ़ियां चलती हैं। पिता और पुत्र दो ही पद हैं। साहेब कहते हैं कि बाप और पुत्र, अर्थात पूरा मानव समाज एक ही नारी जाति से पैदा होता है। अतः यदि हम नारियों को अच्छे संस्कारों से संपन्न करें तो पूरा मानव समाज ही सुसंस्कारित हो। अतएव नारियों का उत्थान अत्यंत आवश्यक है।

'ई अचरज कोई काछे' अर्थात 'पहले जन्म पूत का भयऊ, बाप जन्मिया पाछे' और 'बाप पूत की एकै नारी'—यह सब आश्चर्य भरे शब्द हैं; परंतु जो इनके अर्थ समझ लेगा उसके लिए आश्चर्य नहीं रह जायेगा।

3. "दुंदुर राजा टीका बैठे, बिसहर करै खवासी" दादुर (मेढक) टीकाधारी राजा बनकर राजगद्दी पर बैठ गये हैं और विषधर सर्प उनकी सेवा में लगे हुए हैं।

मेढक के समान मूढ़-बुद्धि के टर्र-टर्र करने वाले लोग राजा बन बैठे हैं। कबीर साहेब अपने समय में देख रहे थे कि वर्षाती मेढकों के समान राजाओं की बाढ़ है और वे विषयों में मूढ़ बने प्रजापालन से लापरवाह हैं। उनके खवास अर्थात चमचागीरी करने वाले लोग सर्प के समान विषधर हैं। ये बिचौलिए राजा की जी-हुजुरी कर समाज का शोषण करते हैं।

4. "श्वान बापुरा धरिन ढाँकनो" बेचारे कुत्ते अपनी पूछों से पूरी पृथ्वी को ढककर उसकी लज्जा की सुरक्षा करते हैं। यह सर्वविदित है कि कुत्ते अपनी पूंछ से अपने गुप्तांग को भी नहीं ढक पाते, अतएव वे स्वयं निर्लज्ज होकर घूमते हैं। फिर वे संसार की मर्यादा क्या रखेंगे? इसी प्रकार जो शासक लोग स्वयं निर्लज्ज हैं, जिनके अपने आचरणों का ठिकाना नहीं है, वे दूसरे के आचरणों के रक्षक बने हैं। ऐसी स्थिति में समाज की क्या दशा होगी?

5. बिल्ली घर में दासी" बिल्ली घर में व्यवस्थापिका बन गयी । यह सब जानते हैं कि बिल्ली जहाँ कहीं खाने की वस्तु देखती है वहाँ अपना मुंह मारती रहती है, फिर वह घर की व्यवस्थापिका बन जाय तो घर का कल्याण कहाँ है । साहेब अपने समय में देख रहे थे कि लंपट लोग ही व्यवस्थापक बने हुए हैं । वस्तुतः किसी भी घर, समाज, संस्था एवं राष्ट्र का व्यवस्थापक गुणातीत होना चाहिए । जो अपने मन और इन्द्रियों को जीत कर नहीं रहेगा, वह परिवार, समाज, संस्था एवं राष्ट्र की क्या व्यवस्था करेगा ?

6. "कार दुकार कार करि आगे, बैल करै पटवारी" कर्तव्य और दुष्कर्तव्य को कर्तव्य बतलाकर बैल पटवारगीरी करने लगे । 'कार' 'कर्तव्य है, 'दुकार' दुष्कर्तव्य है । इन दोनों को 'कार' अर्थात कर्तव्य बतलाकर जो बैल की तरह विवेकहीन लोग हैं वे पटवारगीरी करने लगे । अर्थात ऐसे लोग पुरोहिताई करने लगे जिन्हें कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध नहीं है और यदि बोध है तो स्वार्थ-वश उसके अनुसार वे चलते नहीं हैं ।

7. "कहहिं कबीर सुनो हो संतो, भैंसे न्याव निवेरी" भैंसे न्याय करने लगे । कबीर साहेब कहते हैं कि जो भैंसे के समान तामसी और जड़तापूर्ण हैं वे धर्म के न्याय देने लगे ।

कबीर साहेब ने अपने जमाने के रईस, राजे, उनके चमचे, शासक, व्यवस्थापक, पुरोहित और धर्म के ठेकेदारों की दुर्व्यवस्था देखकर उन पर तथा उनकी व्यवस्था पर व्यंग कसते हुए उक्त पद तथा इसी तरह अन्य पद कहे थे । विचारकर देखा जाय, तो ये सारी समस्याएँ आज भी बनी हुई हैं । राजनैतिक तथा चारित्रिक भ्रष्टता एवं चमचागीरी आजकल अधिक बढ़ गयी है । आज भी धर्म के ठेकेदार ईश्वर के अवतार बने घूम रहे हैं और वे योग-भोग एक साथ संपादित कर समाज को बेवकूफ बना रहे हैं । अतएवं कबीर साहेब के इन व्यंग भरे उपदेशों की आज भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी उनके अपने समय में थी ।

सारग्राही और समन्वयात्मक दृष्टिकोण

कबीर साहेब गलत बातों पर चोट करते हैं। वे मानवता की विभाजक रेखा को मिटा देना चाहते हैं। वे भेद बढ़ाने वालों को खरी-खोटी भी कहते हैं। किन्तु यह सब होते हुए भी वे सबसे सद्गुण एवं सार ग्रहणकर समन्वय करने की राय देते हैं। वे कहते हैं—"सद्गुणी आदमी सबसे सद्गुण ग्रहण करता है और गुणहीन आदमी सद्गुणों से घृणा करता है। बैल को जायफल दिया जाय तो वह उसे क्या समझेगा और क्या खायेगा ? परन्तु दुर्गुणी आदमी भले दुर्गुणजनित काम करे, तुम वैसा अज्ञानजनित काम न करो। क्योंकि अपने सद्गुणों को किसी के दुर्गणों में नहीं मिला देना चाहिए। साधु या सज्जन को तो ऐसा होना चाहिए जैसे सूप का स्वभाव होता है। वह सार-चावल को अपने में रखकर असार भूसी को उड़ा देता है।

गुणिया तो गुण ही गहे, निर्गुणिया गुणहि घिनाय।
बैलहि दीजै जायफर, क्या बूझै क्या खाय॥
वो तो वैसा ही हुआ, तू मति होय अयान।
वो निर्गुणिया तैं गुणवंता, मति एकै में सान॥

(बीजक, साखी 263, 278)

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै, थोथा देय उड़ाय॥

साहेब कहते हैं कि अपनी बातें कहे और मेरी बातें सुने और सुनकर तथा मिलकर एक हो जाय। परन्तु मैं देखता हूँ कि जगत के लोग हठ में ही समय खो रहे हैं। ऐसा मेल-मिलाप करने वाले—सत्यसार को लेने वाले नहीं मिलते।

अपनी कहै मेरी सुने, सुनि मिलि एकै होय।
हमरे देखत जग जात है; ऐसा मिला न कोय॥

(बीजक, साखी 315)

दसवां अध्याय : कबीर की सार्वभौमिक चेतना

मनुष्यों-द्वारा बनाये गये कर्मकांडों एवं घेराबन्दियों को सत्य मान लेने से मनुष्यों की दृष्टि से सार्वभौमिक सत्य ओझल होने लगता है। भाषा, क्षेत्र, देश, वर्ण, जाति, संप्रदाय, लिंग आदि जनित नकली विभेदों को लेकर मनुष्य का मन इतना संकुचित हो जाता है कि वह सार्वभौमिक सत्यता और एकता को देख ही नहीं पाता। सद्गुरु कबीर इन सारे विभेदों को छिलके की तरह उतारकर फेंक देते हैं। कबीर अभेददर्शन के परिपक्व एवं ज्वलंत मूर्ति थे। उनकी दृष्टि नकली विभेद पर नहीं थी, किन्तु असली एकता पर थी। वे कहते हैं—

"हे पंडित ! हृदय में विचारकर देखो, कौन स्त्री है कौन पुरुष है। सहज चेतन सब शरीरों में बोल रहा है। उसका चरित जड़ से विलक्षण है। उसका क्या नाम रखोगे, क्योंकि न उसके रंग है और न रूप। हे पगले! तू-तू, मैं-मैं क्या करता है? क्या मेरा है और क्या तेरा है? राम, खुदा, शक्ति तथा शिव एक ही चेतन के नाम हैं, फिर भला उनमें किस एक नाम की प्रार्थना की जाय एवं सहारा पकड़ा जाय ! अथवा सारे नाम शब्द मात्र हैं। उनसे हटकर अपने चेतन स्वरूप में स्थित होना ही श्रेयस्कर है। वेद, पुराण, किताब, कुरान नाना प्रकार से वर्णन करते हैं, परन्तु सत्य नाना प्रकार नहीं है। हिन्दू, तुरुक, जैनी एवं योगी आदि मतावलंबी इस एकता की मधुरता को नहीं समझते। योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश तथा ब्राह्मण—ये छह दर्शनों के नाना मतों ने जिन नाम-रूपों को प्रामाणिक मान लिया है, उन्हीं में उनका मन दृढ़ हो गया है। कबीर साहेब कहते हैं कि ये सत्य को तोड़-तोड़कर देखने वाले सयाने लोग हम ही को पागल कहते हैं। यथा—

पण्डित देखहु हृदय बिचारी, को पुरुषा को नारी।
सहज समाना घट-घट बोले, वाके चरित अनूपा।
वाको नाम काहु कहि लीजै, न वाके वर्ण न रूपा।।
तैं मैं क्या करसी नर बौरे, क्या मेरा क्या तेरा।
राम खुदाय शक्ति शिव एकै, कहु धौं काहि निहोरा।।
वेद-पुराण कितेब कुराना, नाना भाँति बखाना।
हिन्दू तुरुक जैनि औ योगी, ये कल काहु न जाना।।
छौ दर्शन में जो परवाना, तासु नाम मनमाना।
कहहिं कबीर हमहीं पै बौरे, ई सब खलक सयाना।।

(बीजक, शब्द-48)

वे मिथ्या भेदभाव पर चोट करते हुए कहते हैं—"संसार में लोगों के मन में ऐसा भ्रम एवं भारी उलझन है कि नकली अनेकता में उलझकर असली एकता को नहीं देख पाते हैं। भला वेद-किताब में क्या झगड़ा होना चाहिए। ये सब पढ़ने तथा इनसे सार ग्रहण करने की वस्तुएँ हैं। हम दीन-दार, दूसरे बेदीन, इसलिए दूसरे दीन वाले नरक में जायेंगे, यह संकुचितता क्यों? कौन पुरुष है कौन नारी है? नारी-पुरुष परिचायक तो केवल शरीर के कुछ अंग हैं। आत्मा तो सबकी एक समान है। सबके शरीर का साज मिट्टी का बना है और नाद-विंद से खड़ा है। हे अज्ञानी! तू भूल रहा है, सत्य की खोज कर। देख, शरीर के विनश जाने पर शुद्ध चेतन जो सार है उसका क्या नाम रखेगा—स्त्री या पुरुष, ब्राह्मण या शूद्र, हिन्दू या मुसल-मान! सबके शरीर में एक ही समान चाम, हाड़, मल, मूत्र, रक्त और मांस हैं। एक ही बुन्द-वीर्य से शरीर की सृष्टि रची है। इनमें कौन ब्राह्मण है और कौन शूद्र? रजोगुण प्रधान लोग ब्रह्मा हैं; तमोगुण प्रधान लोग शंकर हैं और सतोगुण प्रधान लोग हरि हैं। इस प्रकार प्राणिमात्र त्रिदेव के रूप हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि आत्माराम एवं स्वरूपराम में रमो, न कोई हिन्दू है और न मुसलमान! यथा—

ऐसो भरम बिगुर्चन भारी ।
वेद-कितेब दीन औ दोजख, को पुरुषा को नारी ॥
माटी का घट साज बना है, नादे बिन्द समाना ।
घट बिनसे क्या नाम धरहुगे, अहमक खोज भुलाना ॥
एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा ।
एक बुन्द से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा ॥
रजोगुण ब्रह्मा तमोगुण शंकर, सतोगुणी हरि होई ।
कहहिं कबीर राम रमि रहिये, हिन्दू तुरुक न कोई ॥
(बीजक, शब्द 75)

कबीर साहेब भेदभाव के सख्त खिलाफ हैं । वे हमें दिखावा से हटकर यथार्थ पर आने के लिए झकझोरते हैं । सम्प्रदायों ने ईश्वर और अल्ला को जीवों से अलग बनाये रखने का बड़ा प्रयत्न रखा है । उन्होंने ईश्वर-अल्ला को मानव से दूर सातवें तपक या सातवें लोक में बैठा दिया । इसका फल हुआ कि जीव एवं मनुष्यों का मूल्य गिराया गया । कबीर साहेब को यह सहन नहीं । उन्होंने जीव से शीव तथा ईश्वर-अल्ला को अलग नहीं माना । इसीलिए उनके ख्याल से मानव तथा जीव मात्र का मूल्य अधिक था । वे अल्लाह और राम को आकाशीय तथा कल्पना का विषय न मानकर जीवरूप एवं आत्मरूप मानते हैं । वे कहते हैं—

"हे मानव ! अल्लाह और राम तेरे जीव के समान हैं । अर्थात जीव ही अल्लाह है, जीव ही राम है । हे मानव ! तू ही साईं है, स्वामी एवं श्रेष्ठ है । तू जिस पर कृपा कर दे उसी को ईश्वर बना दे । आकाश, तारे, सूर्य, चांद, पानी, पत्थर, पेड़, पहाड़ सबको तूने ही देवी-देवता एवं ईश्वर बनाया है । जीव ही तो सारी कल्पनाओं का जनक है । मिट्टी-पत्थर की पिंडी एवं जमीन पर सिर झुकाने से क्या होता ? और गंगा-यमुनादि नदियों में नहाने से भी क्या होता है ? करे जीव-हत्या और बने विनम्र भक्त और इस प्रकार अपनेअव गुणों को छिपाये रखे, तो यह भक्ति नहीं है । वुजू, जप, मंजन करने

तथा मसजिद में सिर झुकाने से क्या होता है ? यदि हृदय में कपट है तो नमाज पढ़ने और मक्के की यात्रा करने से क्या होता है ? हिन्दू वर्ष में चौबीस एकादशी व्रत रखते हैं और मुसलमान तीस दिन के रोजा रहते हैं। कहो भला, केवल एक महीना को पवित्र मानकर अन्य ग्यारह महीने को किसने अशुद्ध ठहराया ? ग्यारह महीने निरर्थक और एक महीना ही मोक्षदायी क्यों ? पवित्र मन वालों के लिए सारे दिन और महीने पवित्र हैं। यदि खुदा मसजिद में रहता है तो दुनिया के अन्य हिस्से किसके हैं ? इसी प्रकार यदि केवल तीर्थ और मूर्ति में राम निवास करता है, तो अन्य जगह में कौन निवास करता है ? इन हिन्दू और मुसलमानों में किसी ने सत्य की खोज नहीं की और सार्वभौमिक सत्य से आँखें मीचकर संकुचित मान्यताओं में उलझ गये। यदि हिन्दुओं के ख्याल से पूर्व दिशा में भगवान निवास करता है और मुसलमानों के ख्याल से पश्चिम दिशा में अल्लाह निवास करता है, तो ये दोनों ही अल्लाह तथा राम को नहीं जानते। हे मानव ! अपने दिल में खोजो, केवल अपने दिल में खोजो ! ये हृदय निवासी चेतन ही करीम और राम हैं। वेद और किताब को कौन झूठा कहता है ? झूठा तो वह है जो उन पर विचार नहीं करता और उन्हें ईश्वरीय मानकर आस्तिक-नास्तिक, दीनदार-बेदीन का झगड़ा करता है। सभी शरीरों में एक-एक जीव निवास करता है जो एक समान सजाति हैं, अतएव दूसरे को पीड़ा देने से भय करो। संसार में जितने औरत-मर्द पैदा होते हैं, सब तुम्हारे रूप हैं। घट-चिन्ह की भिन्नता से आत्मस्वरूप के लक्षणों में भिन्नता नहीं हो सकती। कबीर साहेब कहते हैं—ऐ हिन्दू-मुसलमानो एवं इसाइयो ! तुम लोगों ने जो राम, कृष्ण, ईसा, मुहम्मद आदि को ईश्वर-अल्ला का नूर, अंश, बालक एवं पुत्र मान रखा है, उन्हें हम अपना गुरु-पीर मानते हैं। हम उनका आदर करते हैं।" (कबीर साहेब श्रीराम, कृष्ण, ईसा, मुहम्मद आदि को अवतार, ईश्वर-पुत्र या पैगंबर नहीं मानते, किन्तु वे उन्हें गुरु-पीर तुल्य पूज्य एवं आदरणीय मानते हैं। कबीर साहेब का दृष्टिकोण कितना बुद्धि एवं श्रद्धा समन्वित है। सोचते ही बनता है।) मूल वचन इस प्रकार है—

अल्लाह राम जियो तेरी नाँई, जिन्ह पर मेहर होहु तुम साँई।
क्या मुण्डी भूईं शिर नाये, क्या जल देह नहाये।
खून करे मिस्कीन कहाये, अवगुण रहे छिपाये।
क्या वजू जप मंजन कीये, क्या महजिद शिर नाये।
हृदय कपट निमाज गुजारे, क्या हज मक्के जाये।
हिन्दू बरत एकादशी चौबीस, तीस रोजा मुसलमाना।
ग्यारह मास कहो किन टारे, एक महीना आना।
जो खुदाय महजीद बसतु है, और मुलुक केहि केरा।
तीरथ मूरत राम निवासी, दुइमा किनहुँ न हेरा।
पूरब दिशा हरी को बासा, पश्चिम अल्लह मुकामा।
दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा।
वेद कितेब कहा किन झूठा, झूठा जो न विचारे।
सब घट एक-एक कै लेखे, भय दूजा के मारे।
जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर पोंगरा अल्लह राम का, सो गुरु पीर हमारा।
(बीजक, शब्द 97)

'जात' शब्द संस्कृत भाषा का है। उसका अर्थ है पैदा होना। जिनकी पैदाइश एक ढंग की है, उनकी जात एक है। गाय और ऊँट के संयोग से, घोड़ा और हथिनी के संयोग से तथा शूकर और बकरी के संयोग से बच्चे नहीं पैदा होते, इसलिए इनकी जातियाँ एक नहीं हैं; किन्तु भूमण्डल के किसी भी कोने के नर तथा नारी के संयोग से बच्चे पैदा होते हैं इसीलिए पूरे मानव की जात एक है। इस जातीय एकता को नजरअन्दाज कर मजहबी भावनाओं ने उसे खण्डित कर डाला है। कबीर साहेब कहते हैं—

"हे काजी ! तुम किस किताब की व्याख्या करते रहते हो ? तुम रात-दिन मजहबी बातें झंखते-बकते रहते हो, किन्तु एक भी सार विचार को नहीं समझते। तुम ईश्वर और मजहब की दोहाई देकर तथा जोर डालकर बच्चों का खतना करते हो। उनकी पेशाब-इंद्रिय की खलड़ी कटाते हो। हे भाई, मैं इस

बात को उचित नहीं मान सकता। यदि खुदा सचमुच तुम्हारा खतना करना चाहता है तो माता के गर्भ में से अपने आप कटकर क्यों नहीं आ जाता ? खुदा सारे शरीर को बना सकता है, तो वह पेशाब-इन्द्रिय की खलड़ी नहीं काट सकता ? क्या तुम ईश्वर की बुद्धि का सुधार करते हो ? यदि खतना करके ही मुसलमान हुआ जाता है, तो औरतों को क्या कहोगे ? उनका तो खतना नहीं हो सकता। नारी पुरुष का आधा शरीर मानी जाती है। अतएव मुसलमान कहलाने वाले आधा हिन्दू ही रह गये। पति मुसलमान और पत्नी हिन्दू, यह कोई बात हुई ?"

उपर्युक्त बातें सुनकर ब्राह्मण लोग बहुत खुश हुए कि कबीर ने मुसलमानों को खूब लताड़ा। कबीर साहेब ने कहा—सुनो ब्राह्मणो ! तुम्हारी बारी अब आयी है—

"यदि जनेऊ पहनकर ब्राह्मण बनते हो तो यह बताओ कि तुमने अपनी पत्नी को क्या पहनाया है ? उसको तो वेद, गायत्री, यज्ञोपवीत आदि से वंचित ही रखते हो। जब तुम्हारी पत्नी गायत्री-जनेऊ आदि द्विजत्व संस्कार से वंचित और जन्म से ही शूद्रा है, तब हे पण्डित ! तुम उसका परोसा हुआ भोजन क्यों खाते हो ?

"एक मानव-जाति में हिन्दू और मुसलमान का भेद कहाँ से आ गया ? वर्ण, वर्ग, जाति आदि की काल्पनिक राह किसने चलायी ? हे सत्य-शोधक ! खोजकर दिल में देख, स्वर्ग की कल्पना कहाँ से आयी कि मेरे दीन का आदमी स्वर्ग में जायेगा तथा दूसरे दीन का आदमी नरक में। कबीर साहेब कहते हैं हे सन्तो ! सुनो, और हे भाई ! समझो, ये मजहबी लोग अपनी मान्यताओं को जनता पर लादने के लिए जोर-जबर्दस्ती करते हैं। ये भूले लोग कहते हैं कि हमारा मजहब ईश्वरीय है। ये ईश्वर की ओट में अपनी मान्यता को थोपना चाहते हैं। अतएव इन्हें अन्त में पछताकर चलना पड़ेगा।" मूल वचन इस प्रकार है—

काजी तुम कौन कितेब बखानी।
झंखत बकत रहहु निशि-बासर, मति एकौ नहिं जानी।
शक्ति अनुमाने सुन्नति करतु हो, मैं न बदौंगा भाई।
जो खुदाय तेरी सुन्नति करतु है, आपुहि कटि क्यों न आई।
सुन्नति कराय तुरुक जो होना, औरत को क्या कहिये।
अर्ध शरीरी नारि बखानी, ताते हिन्दू रहिये।
पहिरि जनेउ जो ब्राह्मण होना, मेहरी क्या पहिराया।
वो जन्म की शूद्रिन परसे, तुम पाँड़े क्यों खाया।
हिन्दू तुरुक कहाँ ते आया, किन्ह यह राह चलाया।
दिल में खोजि देखु खोजादे, बिहिस्त कहाँ ते आया।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, जोर करतु हैं भाई।
कबिरन ओट राम की पकरी, अन्त चले पछिताई।

(बीजक, शब्द 84)

मनुष्य टट्टी करके आया हो तो वह अछूत है। स्नान कर स्वच्छ वस्त्र पहन लिया हो तो वह अछूत नहीं है। गंदा हाथ अछूत है। शुद्ध हाथ अछूत नहीं है। लोग कैसे अजीब होते हैं, शुद्धाशुद्धि के आधार पर छूआछूत न मान-कर कल्पित वर्ण-जाति के आधार पर मानते हैं जो विवेक-विरुद्ध है। लोग गाय, बकरी एवं कुतिया तक के बच्चे को अपनी गोद में रखकर उन्हें खेला लेते हैं। वे उन्हें अछूत नहीं मानते, किन्तु मनुष्य के बच्चे को अछूत मानते हैं। कबीर साहेब छूआछूत पर करारा प्रहार करते हुए कहते हैं—

"हे पण्डित ! मन में समझकर देखो, कहो भला, छूत कहाँ से पैदा होती है जिससे तुमने छूत मान ली ? तुम मानव की पैदाइश को देखो, रज-वीर्य से निर्मित शिशु का शरीर माता के गर्भ में नौ महिने पकता है। फिर वह माता के पेट से बाहर आता है। इस प्रकार मानव की पैदाइश की सारी प्रक्रिया अशुद्धि से पूर्ण है, फिर छूत कहाँ से पैदा हो गयी ? चौरासी लाख योनियों की असंख्य देहें सड़कर इस धरती में मिलती रहती हैं, और इसी पृथ्वी रूप एक पाट पर सब बैठे हुए हैं, फिर किससे तुम छूआछूत मान रहे

हो ? तुम्हारे खाने-पीने आदि सभी चीजों में छूत लगी है। यहाँ तक छूत से सबकी पैदाइश है। कबीर साहेब कहते हैं कि छूत से वही बचा है जो माया से अलग है।'' यथा—

पण्डित देखहु मन में जानी।
हुकँ धौं छूति कहाँ से उपजी, तबहिं छूति तुम मानी ॥
नादे बिन्दे रुधिर के संगे, घटही में घट सपचै।
अष्टकँवल होय पुहुमी आया, छूति कहाँ ते उपजै ॥
लख चौरासी नाना बहु बासन, सो सब सरि भौ माटी।
एकै पाट सकल बैठाये, छूति लेत धौं काकी ॥
छूतिहि जेंवन छूतिहिं अचवन, छूतिहिं जगत उपाया।
कहहिं कबीर ते छूति विवर्जित, जाके संग न माया ॥

''पण्डित वेद-शास्त्रों को पढ़-गुन कर अहंकार में भूल गये। वे अपने आपका भेद नहीं जान सके कि मैं कौन हूँ ? वे संध्या, तर्पण और षटकर्म[1] करते हैं और इस प्रकार धर्म के बहुत रूप का आचरण करते हैं। चारों युगों से गायत्री पढ़ाई जाती है, परन्तु जाकर उनसे पूछो कि इससे किसने मुक्ति पायी है ? हे पण्डित जन ! दूसरे के छूने से तुम अपने ऊपर पानी के छींटें मारकर तथा मन्त्र पढ़कर शुद्धि करते हो—ओम् अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा यः स्मरेत पुण्डरीकाक्षं बाह्याभ्यन्तर शुचिः'' परन्तु भला, तुमसे कौन नीच होगा जो मानव को कल्पित वर्ण और जाति के आधार पर अछूत मानते हो ? मिथ्या वर्ण और जाति को गुण मानकर उसका अधिक गर्व मत करो। अधिक गर्व करने से किसी का कल्याण नहीं हो सकता। जिसका नाम गर्व-प्रहारी है वह तुम्हारे गर्व को कैसे सह सकेगा। वस्तुतः कारण-कार्य की एक अटूट व्यवस्था है। अच्छे काम का परिणाम उन्नति तथा गलत काम का परिणाम पतन होगा ही। ईश्वर गर्व-प्रहारी है, इसका अर्थ है प्रकृति के नियम कर्मों के फल देते हैं।

---

1. यज्ञ करना, कराना, दान देना, लेना और विद्या पढ़ना-पढ़ाना।

"पहले के महापुरुषों ने कुल, जाति एवं वर्णों की मर्यादा का त्यागकर तथा पूर्ण निर्मानी बनकर निर्वाण-पद की खोज की थी। उन्होंने सारे अहंकार के बीज एवं अंकुर नष्टकर विदेह-स्थान को प्राप्त करने का प्रयास किया था।" मूल वचन इस प्रकार है—

पण्डित भूले पढ़ि-गुनि वेदा, आप अपन पौ जानु न भेदा।
संभा तर्पण औ षट कर्मा, ई बहु रूप करें अस धर्मा।
गायत्री युग चारि पढ़ाई, पूछहु जाय मुक्ति किन पाई।
और के छिये लेत हो छींचा, तुम सो कहहु कौन है नीचा।
ई गुण गर्व करो अधिकाई, अधिके गर्व न होय भलाई।
जासु नाम है गर्व प्रहारी, सो कस गर्वहिं सकै सहारी।
साखी—कुल-मर्यादा खोय के, खोजिन पद निर्वान।
अंकुर बीज नशाय के, नर भये विदेही थान।।

(बीजक, रमैनी 35)

मजहब, पंथ, संप्रदाय, समाज आदि विभिन्न देश और काल में निर्मित होते हैं। वे आगे चलकर संवर्धित, परिवर्तित एवं लुप्त भी होते हैं। परंतु धर्म सदैव सब जगह अक्षुण्ण रहता है। अमुक नाम, रूप, मंत्र, वेष, शिष्टाचार, विधान आदि संप्रदाय के लक्षण हैं और शील, दया, प्रेम, करुणा, सत्य, सदाचारादि धर्म के लक्षण हैं। अतएव धर्म में हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन बौद्धादि विशेषण लगाना महाभ्रम है। हिंदू धर्म नहीं है। इसलाम, ईसाई, जैन, बौद्धादि धर्म नहीं है। ये सब परंपरा, मजहब, पंथ एवं संप्रदाय हैं। धर्म तो एक है। वह है करुणा। वह है मानवता। मानवता का अर्थ है जो तुम दूसरे से अपने लिए चाहते हो, वही दूसरे के लिए करो। दूसरे का भला सोचना और भला करना धर्म है। जिसका मन पवित्र नहीं है, वह दूसरे का भला नहीं सोच सकता। अतएव अपना मन पवित्र रखना और दूसरे का भला सोचना तथा करना यही धर्म है। धर्म देश-काल-सापेक्ष नहीं है; किंतु सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक है। धर्म किसी नाम, मंत्र, मजहब, किताब के दायरे

में सीमित नहीं किया जा सकता। वह इन सब से ऊपर है। कबीर साहेब कहते हैं—जब वेद, स्मृतियाँ, कुरान, बाइबिल, बाँग, निमाज, कलमा, पूजा, राम और खुदा के नाम नहीं थे, तब धर्म था कि नहीं ? यथा—

वेद कितेब सुमृत नहिं संजम, नहिं जीवन परिछाई।
बांग निमाज कलमा नहिं होते, रामहु नाहिं खुदाई।

(बीजक, शब्द 22)

हम किसी अन्य लोक में चले जायं, तो क्या आशा करते हैं कि वहाँ वेद, बाइबिल, कुरान, रामायण, गीता, बीजक, गुरुग्रंथ आदि ग्रंथों के नाम-निशान होंगे ? क्या वहां राम-रहीम, ईसा-कृष्ण, बुद्ध-महावीर, कबीर-दयानंद के नाम होंगे ? क्या वहाँ हिंदू-मुसलमान, इसाई-यहूदी मजहब का पता होगा ? यह सब कुछ नहीं होगा। परंतु यदि वहाँ मनुष्य सभ्य हैं तो धर्म अवश्य होगा और वह है जब दो व्यक्ति इकट्ठे हों तब वे एक दूसरे के हित-कार्य में सहयोगी हों। कबीर साहेब कहते हैं—जिसके हृदय में सदैव धर्म बसता है, उसके हृदय में राम-कसौटी रहती है। राम-कसौटी है अंतरात्मा की आवाज।'' यथा—

सदा धर्म जाके हृदया बसई।
राम कसौटी कसतहिं रहई॥

(बीजक, रमैनी 64)

धर्मवान वही है जो अपनी अंतरात्मा की कसौटी से कसकर जीवन की सारी बातों को स्वीकारता या अस्वीकारता है। सद्गुरु कबीर की जोरदार घोषणा है कि धर्म मजहब एवं संप्रदाय से अलग चीज है। वैसे मजहब और संप्रदाय कोई बुरी चीज नहीं है किंतु शर्त यह है कि वे मानव-मानव के बीच में विभाजक-रेखा न बनें, किंतु मिलनबिन्दु बनें।

मजहबियों को प्रायः अहंकार रहता है ''हमारे इष्ट एवं श्रद्धेय ईश्वर के अवतार, पैगंबर या ईश्वर के पुत्र हैं, सर्वज्ञ हैं। हमारी किताबें ईश्वरीय,

अपौरुषेय, अनादि एवं स्वतः प्रमाण हैं। हमारा मजहब एवं संप्रदाय ईश्वरीय है।" उक्त अहंकारपूर्ण धारणाएँ ही सांप्रदायिकता को जन्म देती हैं। उक्त सारी धारणाएँ भोलापन हैं। न किसी मजहब, संप्रदाय एवं परंपरा का महापुरुष सुप्रीम पावर, ईश्वर, पैगंबर एवं ईश्वर-पुत्र है, न दुनिया की कोई किताब अनादि, तथाकथित ईश्वर की दी हुई एवं स्वतः प्रमाण है और न कोई संप्रदाय एवं परंपरा ईश्वर नामधारी का चलाया है। सारे महापुरुष मानव हैं, सारी किताबें मानव-रचित हैं एवं सारे मजहब मानव के चलाये हैं। अतएव कोई मजहब सत्य का एकाधिकारी एवं ठेकेदार नहीं है।

महापुरुष, ग्रंथ एवं मजहब पर ईश्वरीकरण करके ही क्रूरता आयी है। कट्टर ईश्वरवादी यहूदी, ईसाई, मुसलमान, शैव आदि ईश्वर के नाम पर खून की नदियां बहाते रहे। अतएव महापुरुष, किताब एवं मजहब मानवीय हैं, इस तथ्य को समझकर ही मानवता आ सकती है और सच्चे धर्म का उदय हो सकता है। संप्रदाय एवं मजहब कुछ लोगों द्वारा सामूहिक ढंग से उपासना करने के साधन मात्र हैं, सत्य के एकाधिकारी नहीं। हर मजहब एवं संप्रदाय ऐसा वातावरण तैयार करे कि मानव-मानव एक दूसरे के निकट आवे।

ग्यारहवां अध्याय : परमतत्व एवं सहज समाधि

परमतत्व

वेदों या वैदिक साहित्य तथा छह दर्शनों में कहीं भी 'राम' नाम से परम तत्व का वर्णन नहीं है। ईसा के तीन-चार शताब्दी पूर्व श्रीराम के चरित्र के रूप में वाल्मीकीय रामायण में नरकथा लिखी गयी। उसके दो सौ वर्ष बाद उसी में बालकांड जोड़कर उन्हें विष्णु का अंशावतार घोषित किया गया और उसके बारह-तेरह सौ वर्ष बाद श्री राम को परब्रह्म के रूप में अध्यात्म रामायण में चित्रित किया गया। जब कुछ लोगों द्वारा श्रीराम को परब्रह्म माना जाने लगा, तब यह बात अध्यात्मवादियों को खटकने लगी। 'राम' शब्द का खूब प्रचलन हो गया था। समाज में 'राम' शब्द अधिकृत रूप में मान्य हो गया, तो अध्यात्मवादियों ने उसका अपने ढंग से अर्थ किया। उन्होंने कहा कि व्यक्ति की अन्तरात्मा ही 'राम' है। कबीर साहेब इसमें अग्रणी हुए। उन्होंने खुले दिल से 'राम' शब्द को स्वीकारा, किंतु उसका अपना नया अर्थ दिया। समाज में प्रचलित पुराने शब्दों को स्वीकारते हुए अपना नया अर्थ देना बुद्धिमानी एवं क्रांति का काम है। इससे अपने विचार फैलाने में सरलता होती है। गीताकार ने यही किया। गीता रचना के पूर्व सांख्य तथा योग की बड़ी मान्यता थी। महाभारत में ही लिखा है "न सांख्य समं ज्ञानं न योग समं बलम्" अर्थात सांख्य के समान ज्ञान नहीं है तथा योग के समान बल नहीं। कौटलीय अर्थशास्त्रम् के आरम्भ में अन्वीक्षकी विद्या का वर्णन है। उसमें सांख्य, योग तथा लोकायत के नाम लिये गये हैं। गीताकार ने समसामयिक प्रचलित सांख्य और योग के नाम गीता में आदर से लिये, किन्तु उन्होंने उनका अपना नया अर्थ दिया।

कबीर साहेब ने कहा दशरथ-पुत्र राम सबका उपास्य नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष है कृष्ण-उपासक ही राम की उपासना नहीं करते। फिर शैव, शाक्त,

बौद्ध, जैन, पारसी, ईसाई, मुसलमान आदि तो राम की उपासना कर ही कैसे सकते हैं। परंतु राम का अर्थ यदि व्यक्ति की अपनी चेतना एवं अंतरात्मा है तो वह सबका उपास्य हो सकता है। हिन्दू-मुसलमान, ईसाई-यहूदी या संसार का कोई मतावलंबी अपनी अंतरात्मा का तिरस्कार नहीं कर सकता। कबीर साहेब ने रामानंदियों द्वारा उपास्य एकदेशी एवं एकपक्षीय राम को सार्वभौमिक बनाया। उन्होंने कहा कि राम नाम से दशरथ पुत्र को सब जानते हैं; किन्तु राम नाम का रहस्य कुछ और है। यथा—

दशरथ सुत तिहुँ लोकहिं जाना।
राम नाम का मर्म है आना॥

(बीजक, शब्द 109)

सद्गुरु कबीर साहेब ने जोर देकर कहा—रामगुण न्यारा है, न्यारा है, न्यारा है। जो लोग अबूझ हैं, वे कहाँ तक समझ सकते हैं। समझने वाले ही समझ सकते हैं। श्रीराम-जैसे कितने ही वनवासी तपस्वी हो गये और कितने ही बंशी बजाने वाले श्री कृष्ण-जैसे हो गये, परन्तु ये भी अन्त नहीं पाये। यथा—

राम गुण न्यारो न्यारो न्यारो ॥1॥
अबुझा लोग कहाँ लों बूझै, बूझनहार विचारो ॥2॥
केतेहि रामचन्द्र तपसी से, जिन्ह यह जग बिटमाया ॥3॥
केतेहि कान्ह भये मुरलीधर, तिन्ह भी अन्त न पाया ॥4॥

(बीजक, शब्द 18)

कबीर साहेब ने इस हृदय-निवासी जीव को ही 'राम' माना है—"हृदया बसै तेहि राम न जाना,' (रमैनी 41)। वे कहते हैं जो राम हृदय में वसता है लोग उसे नहीं समझते। कबीर साहेब के ख्याल से जीव, चेतन, राम, हरि आदि का अर्थ शुद्ध चेतन एवं अंतरात्मा ही है।

'हरि' शब्द पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। वेदों, वैदिक साहित्य तथा वैदिक छह दर्शनों में 'हरि' शब्द आत्मा-परमात्मा के लिए प्रयुक्त होता

हुआ नहीं दिखता। वेदों में हरि का अर्थ घोड़ा तथा वाल्मीकीय रामायण में वानर है। वाल्मीकीय रामायण में हनुमान, सुग्रीव आदि को बारम्बार 'हरीश्वर:'—वानरपति कहा गया है।

पारसी लोग अपने ईश्वर का नाम 'अहुरमज्द' कहते हैं। जब भारत के संस्कृत भाषा वाले उनके संपर्क में आये, तब इन्होंने 'अहुरमज्द' को 'हरिमेधस' कहा। महाभारत में कथा आती है कि नारद श्वेतद्वीप (आज के ईरान) से लौटकर उत्तराखण्ड में नर-नारायण नामक ऋषियों के पास जाते हैं और उनसे श्वेतद्वीप वालों की 'हरिमेधस' की उपासना का बड़े रोचक ढंग से वर्णन करते हैं। इतिहासज्ञ लोग मानते हैं कि इसका प्रभाव वासुदेव-उपासकों पर पड़ा। आगे चलकर 'हरिमेधस' में से 'मेधस' तो उड़ गया और 'हरि' रह गया जो विष्णु, परमात्मा आदि का वाचक बना। ईसा के बाद गुप्तकाल में 'हरि' शब्द विष्णु और परमात्मा के अर्थ में जोर से प्रचलित हो गया। वैष्णवों में हरि शब्द का बाहुल्य हुआ। कबीर साहेब का वैष्णवों से निकट सम्बन्ध था, अतएव उन्होंने भी हरि शब्द का प्रयोग अपनी वाणियों में किया।

कबीर साहेब के बीजक में हरि शब्द का काफी प्रयोग है। यह 'हरि' अनेक जगह विष्णु के लिए है। जैसे "हरि हर ब्रह्मा महंतो नाऊँ" (रमैनी 1) या "हरिहर ब्रह्मा न ऊबरे, सुर नर मुनि केहि केर।" (रमैनी 46) इत्यादि।

सद्गुरु कबीर ने 'राम' की तरह 'हरि' शब्द का प्रयोग भी अंतरात्मा के लिए किया है। उन्होंने जहां कहीं भी 'हरि' शब्द विधेयात्मक ढंग से लिया है उसका अर्थ अंतरात्मा, गुरु, ज्ञानादि है। यथा—

हरि बिनु भर्म बिगुर्चन गंदा। (शब्द 38)
ना हरि भजसि न आदत छूटी। (शब्द 57)
नर हरि लागि दौं बिकार बिनु इंधन। (शब्द 58)
हरि हीरा जन जौहरी। (साखी 169)

आपा तजै हरि भजै। **(साखी 136)**
निर्पक्ष ह्वै के हरि भजे। **(साखी 138)**

उक्त हरि या राम का अर्थ यदि अपने चेतन स्वरूप से, जीव एवं अंतरात्मा से अलग माना जाये, तो यह एक कल्पना का विषय है और ऐसी कल्पना को सद्गुरु पसंद नहीं करते। फिर वे कहते हैं कि यदि अपनी अंतरात्मा से हरि, राम या परमात्मा अलग है तो यह हरि या राम के नाम पर ठगाई विद्या है। वे ऐसी जगह कह बैठते हैं—

हरि ठग ठगत ठगौरी लाई। **(शब्द 36)**
हरि ठग ठगत सकल जग डोले। **(शब्द 37)**
ठगि-ठगि मूल सबन का लीन्हा।
राम ठगौरी काहु न चीन्हा॥ **(शब्द 36)**

सद्गुरु कबीर आत्मा से अलग परमात्मा या जीव से अलग शीव की कल्पना को राम-ठगौरी मानते हैं। यह राम या हरि के नाम पर अपने आप को ठगा देना है। इसलिए वे खुलकर कह देते हैं कि सब प्रकार से अपने आत्मतत्व एवं आत्मबल का विश्वास करो। अपने से पृथक हरि मानकर जो कल्पना में दौड़ा जाता है उसका रहस्य कोई नहीं जान सका। यथा—

आपन आश कीजै बहुतेरा।
काहु न मर्म पावल हरि केरा॥ **(शब्द 77)**

बीजक में हरि, राम आदि विधेयात्मक ढंग से देखकर उनके अर्थ में अपनी आत्मा से अलग ईश्वर की कल्पना करना एक भ्रम है। साहेब जीव से अलग शीव नहीं मानते। वे अपना निर्णीत सिद्धान्त देते हैं—

झगरा एक बढ़ो राजाराम, जो निरुवारे सो निर्बान।
ब्रह्म बड़ा कि जहाँ से आया, बेद बड़ा कि जिन्ह उपजाया।
ई मन बड़ा कि जेहि मन माना, राम बड़ा कि रामहि जाना।
भ्रमि-भ्रमि कबिरा फिरे उदास, तीर्थ बड़ा कि तीर्थ का दास।
(बीजक, शब्द 112)

अर्थात्—एक झगड़ा है कि राजाराम, श्रेष्ठ राम एवं महान तत्व क्या है ? जो इसका निर्णय करे वह कल्याणपद का अधिकारी है। कबीर साहेब प्रश्न करते हैं ब्रह्म बड़ा है कि ब्रह्म की कलपना जिसने की वह बड़ा है ? वेद बड़े हैं कि वेद के रचयिता ? मन बड़ा है कि मन को मानने वाला ? राम बड़ा है कि राम को जानने वाला ? लोग तीर्थों में उदास होकर भटकते हैं किंतु तीर्थ वड़े हैं कि तीर्थों का सेवन करने वाले ?

यहाँ कबीर साहेब अपने आध्यात्मिक मंतव्यों का सार कह देते हैं। वे कहते हैं कि राम, ब्रह्म, वेद, मन, तीर्थ, देवी-देवतादि सबकी कल्पना करने वाला यह 'जीव,' यह 'आत्मा,' यह 'मैं' ही है। यदि मैं से, अपने चेतन स्वरूप से राम-ब्रह्म आदि पृथक हैं, तो वे श्रेष्ठ नहीं। परम श्रेष्ठ तो यह सबका स्थापक, कल्पक, निर्धारक जीव ही है।

यहाँ कबीर साहेब का वैज्ञानिक दृष्टिकोण उभरकर सामने आता है। जिसने ब्रह्म-ईश्वर, राम-रहीम की कल्पना एवं अवधारणा की, जिसने वेद, बाइबिल, कुरान एवं शास्त्र रचे, जिसने ज्ञान-विज्ञान का विकास किया, जिसने सारी मान्यताओं का सिर्जन किया, जिसने सारे तीर्थ और देवी-देवताओं को बनाया, वह कौन है ? वह मनुष्य जीव ही है। कृत्रिम बड़ा नहीं होता, कर्त्ता ही बड़ा होता है। यह जीव ही कर्त्ता है। इसी ने ईश्वरादि की कल्पना की है। इसी ने सारे वेद-शास्त्र रचे हैं। इसी ने तीर्थ और देवता बनाये हैं। इसलिए परम तत्व यह जीव ही है। जीव को हटा देने पर शिवत्व की घटना कहाँ घटेगी ? यदि आत्मा ही तुच्छ है तो परमात्मा कहां फलित होगा ? सदगुरु ने कहा है कि जो जीव को तुच्छ कहता है वह अपराधी है "अपने गुण को अवगुण कहहू। इहै अभाग जो तुम न विचारहू।" (रमैनी 65)। इसीलिए कबीर साहेब ने अपने चेतन स्वरूप के लिए जीव शब्द का प्रयोग सर्वाधिक किया है। यथा—

एक जीव कित कहौं बखानी। (रमैनी 1)
जो जानहु जिव आपना, करहु जीव को सार। (साखी 10)

जीव रूप एक अंतर बासा। (रमैनी 2)
जो जानहु जग जीवना, जो जानहु सो जीव। (साखी 11)

संसार में दो ही मूल तत्व हैं, एक चेतन और दूसरा जड़। चेतन अपने आपको जानता है और जड़ को भी। परन्तु जड़ न अपने आप को जानता है और न चेतन को। चेतन में ही जानने की क्षमता है। जानने एवं समझने के गुण को परख या पारख भी कहते हैं। अतएव जीव का स्वरूप पारख है। परखना उसका धर्म है। यद्यपि जीव का स्वरूप पारख है, तथापि यथार्थ पारख प्राप्त करने के लिए गुरुकृपा की आवश्यकता होती है। सद्गुरु ने कहा है—"संसार में रत्न और पत्थर दोनों हैं, किन्तु इनके पारखी बिरले हैं। रत्न से भी उसके पारखी उत्तम हैं और वे जगत में थोड़े होते हैं।" यथा—

नग पषाण जग सकल है, पारख बिरला कोय।
नग ते उत्तम पारखी, जग में बिरला होय।।
(बीजक, साखी 290)

सद्गुरु कबीर ने बीजक में पारख पर बड़ा जोर डाला है। उन्होंने यहाँ तक कहा है कि पारख के बिना तुम्हारा विनाश है। अतएव विचार कर जड़ बन्धनों से अलग हो जाओ।

साहु चोर चीन्हें नहीं, अन्धा मति का हीन।
पारख बिना विनाश है, करि विचार होहु भीन।।
(बीजक, साखी 159)

वस्तु अलग है और खोजते अलग हैं तो वह कैसे मिलेगी। वही सज्जन प्रशंसनीय है जो अपने पास पारख रखता है। यथा—

बस्तू अन्तै खोजै अन्तै, क्यों कर आवै हाथ।
सज्जन सोई सराहिये, जो पारख राखै साथ।।
(बीजक, साखी 246)

सद्गुरु कहते हैं कि रत्न तो अपनी गांठ में ही है, परन्तु पारख के बिना लोग भटक रहे हैं। जिन्हें पारख है वे उसे खोल लेते हैं। ऐसे सुनहले अवसर के बीत जाने पर रत्न नहीं मिलेगा।

गाँठी रतन मर्म नहिं जाने, पारख लीन्हा छोरी हो।
कहहिं कबीर यह औसर बीते, रतन न मिले बहोरी हो॥

(बीजक, कहरा 6)

सद्गुरु कबीर ने हमें आज्ञा दी है कि पारखी की संगत करो और गुरुमुख वाणियों का विचार करो।

पारखी से संग करु, गुरुमुख शब्द विचार।

(बीजक, साखी 82)

सद्गुरु कहते हैं कि तुम्हारी भूल तब मिटेगी जब तुम्हें पारखी गुरु मिलेंगे और वे तुम्हें पारख लखा देंगे। हे भाई, सबके अज्ञान-रोग की निवृत्ति के लिए पारख ही औषध है। यथा—

भूल मिटै गुरु मिलै पारखी, पारख देहिं लखाई।
कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबको भाई॥

(बीजक, शब्द 115)

सद्गुरु कबीर ने इसे बारम्बार दोहराया है कि आत्मा से अलग परमात्मा को खोजना मिथ्या भ्रम है। वे कहते हैं—

"मछली पानी में रहते हुए भी प्यासी है यह बात सुन-सुनकर मुझे हंसी आती है। अर्थात जीव शिवस्वरूप होकर भी शिव को भ्रम-वश बाहर खोजता है। आत्मज्ञान एवं स्वरूपज्ञान के बिना मनुष्य उसी प्रकार मथुरा और काशी में भटकता है, जैसे मृगा की नाभि में कस्तुरी होते हुए भी उसको पाने के लिए वह वन-वन घास-फूसों में खोजता है। जल के बीच में कमल होते हैं कमलों के बीच में कलियाँ होती हैं और कलियों में भंवरे निवास करते हैं।

इसी प्रकार शरीर में हृदय, हृदय में वृत्तियाँ और वृत्तियों में आत्मा निवास करता है। परन्तु वह चेतन अपनी भूल से मन के वश भटकता है। यती, सती, संन्यासी भी मन के चक्कर में पड़े हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव तथा अठासी हजार मुनि भी जिसका ध्यान धारण करते हैं, वह परम पुरुष अविनाशी चेतन तत्व तेरे हृदय के भीतर विराजने वाला तेरा स्वरूप ही है। जो स्वयं प्रत्यक्ष अपना स्वरूप है उस परमतत्व को अपने से दूर बताते हैं। अपने से पृथक, अपने से दूर की बात करना तो निराशाजनक है। यदि शिव जीव से अलग है, यदि परमात्मा आत्मा से भिन्न है तो वह उधारी का सौदा है। उससे हमें परम तृप्ति कैसे मिल सकती है? स्वस्वरूप से भिन्न तो सब माया है। मन की कल्पना को ही परमात्मा मानकर भटकना घोर अविद्या है। अतएव गुरुदेव कहते हैं कि अपने स्वरूप को समझो। बिना सद्गुरु के उपदेश के तुम्हारा भ्रम दूर नहीं हो सकता है।

पानी में मीन पियासी, मोहि सुनि सुनि आवै हांसी ॥1॥
आतम ज्ञान बिना नर भटकै, कोइ मथुरा कोइ काशी ।
जैसे मृगा नाभि कस्तूरी, वन वन फिरत उदासी ॥2॥
जल बिच कमल कमल बिच कलियां, तेहि पर भंवर निवासी ।
सो मन वश त्रैलोक भयो सब, यती सती संन्यासी ॥3॥
जाके ध्यान धरत विधि हरिहर, मुनि जन सहस अठासी ।
सो तेरे घट माँहि विराजे, परम पुरुष अविनाशी ॥4॥
है हाजिर तेहि दूर बतावै, दूर की बात निरासी ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, बिन गुरु भरम न जासी ॥5॥

हम अज्ञान से अपने प्राप्तव्य को अपने से अलग समझते हैं। यही हमारे भटकने का कारण है। कबीर साहेब की वाणियों में हरि, राम आदि शब्दों को देखकर जो लोग उसका लक्ष्यार्थ परोक्ष में खोजने की चेष्टा करते हैं, वे अपने आपको धोखे में डालते हैं। न तो कबीर साहेब का मंतव्य परोक्ष का है और न वस्तु-तथ्य ही ऐसी है। अपने सहज स्वरूप चेतन तत्व से अलग

कौन-सा आत्मा-परमात्मा है जिसे व्यक्ति पाना चाहता है। 'दूर की बात तो निरासी' ही है। इसीलिए सद्गुरु कहते हैं—

हृदया भीतर आरसी, मुख देखा नहिं जाय।
मुख तो तबही देखिहो, जब दिल की दुविधा जाय॥
(बीजक, साखी 29)

रमण महर्षि कहते हैं—

"वास्तव में, ऐसा कोई भी नहीं है जो यह न कहता हो कि "मैं हूँ"।
(श्री रमण महर्षि से बातचीत, पृष्ठ 101)

"ईश्वर अज्ञात सत्ता है। इसके अतिरिक्त वह बाह्य है। जबकि आत्मा सदैव तुम्हारे साथ है तथा वह तुम हो। जो तुम्हारे अन्दर है, उसे छोड़कर जो बाह्य है, उसकी तलाश क्यों ?"

"आत्मा का ज्ञान परमात्मा का ज्ञान है। वास्तव में आत्मा के अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं है।" (वही, पृष्ठ 112)

"मैं ब्रह्म हूँ" अथवा "सर्व ब्रह्म है" के विचारों से परे रहना ही जीवन्मुक्ति है।" (वही पृष्ठ 117)

"ईश्वर को छोड़ो, क्योंकि वह अज्ञात है।" (वही, पृष्ठ 121)

"शान्त रहो और जानो कि मैं परमात्मा हूँ।" (वही, पृष्ठ 127)

"जीव की ब्रह्म से एकता होने में, ब्रह्म श्रुत मात्र है तथा जीव का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। तुम प्रत्यक्ष अनुभव से ही लाभ उठा सकते हो; अतः देखो तुम कौन हो।" (वही, पृष्ठ 331)

"अस्तित्व ही मैं हूँ" "मैं हूँ"। ईश्वर है यह सोचना नहीं है; किन्तु "मैं ईश्वर हूँ"। अनुभव करो "मैं हूँ" यह चिंतन मत करो "मैं हूँ"। निर्देश है जानो "मैं ईश्वर हूँ" न कि "विचार करो मैं ईश्वर हूँ।" (वही, पृष्ठ 358)

संतों, सहज समाधि भली

मनुष्य का मन विषय-वासनाओं की मलीनता में लिप्त है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, घृणा, द्वेष आदि मलीनता के लक्षण हैं। इसके फल में मन सदैव चंचल, हर्ष-शोक से पीड़ित एवं अव्यवस्थित रहता है। मलीन मन के कारण जीव अपने सहज स्वरूप में स्थित नहीं हो सकता। समस्त साधनों का उद्देश्य है मन की मलीनताओं को धो देना।

मन की मलीनता बन्धनों का मूल है और मन की पवित्रता कल्याण का मूल है। सद्गुरु कहते हैं मूल पकड़ने से कल्याण है। तू अन्यत्र भरमे-भटके मत। मन समुद्र है और इच्छाएँ तरंगें हैं। इनमें बहकर कहीं मत जावे।

मूल गहे तेते काम है, तें मत भरम भुलाव।
मन सायर मनसा लहरि, बहे कतहु मत जाव॥

(बीजक, साखी 90)

इस मन की धारा से बचने के लिए सद्गुरु ने अकिल-कला और विवेक को बताया है। अकिल-कला पारख है। पारख और विवेक से ही मन पर पूर्ण नियन्त्रण हो सकता है।

"भावनाओं की नाना तरंगें हैं। मन भंवरा उनमें अन्धा बना भटक रहा है। कबीर साहेब पुकारकर कहते हैं कि तुम अकिल-कला बूझ लो। मन को परखने की शक्ति प्राप्त कर लो। मन-समुद्र की इच्छा-तरंगों में बहुत से असावधान डूब गये हैं। कबीर देव कहते हैं कि इन से वही बचेगा, जिसके हृदय में विवेक होगा।" यथा—

नाना रंग तरंग हैं, मन मकरन्द असूझ।
कहहिं कबीर पुकारि के, तें अकिल कला ले बूझ॥
मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत।
कहहिं कबीर ते बाँचि हैं, जाके हृदय विवेक॥

(बीजक, साखी 96, 107)

मनुष्य जितना विचार-विवेक की गहराई में उतरता है उतनी वस्तुएँ खोती चली जाती हैं और मन का मोह टूटता चला जाता है। शरीर स्थूल दृष्टि से एक आकर्षक पदार्थ है। विवेक से देखने पर हड्डी-मांस का पिंड है। विवेक की गहराई में हम जितना उतरते जाते हैं उतना ही शरीर मिट्टी की पिंडी एवं सूक्ष्म कणों का प्रवाह प्रतीत होने लगता है। विवेक से सारा दृश्य ही नश्वर प्रतीत होने लगता है। फिर कहाँ राग किया जाय ? राग के निवृत्त होने पर चित्त संसार से लौटकर अपने सहज स्वरूप में स्थित होता है।

सद्गुरु कबीर ने बीजक में 'सब दुखों से छूटने' तथा 'सब सुखों को पाने' की चर्चा कई बार की है। मानसिक पीड़ा ही 'सब दुख' है और मन की पवित्रता एवं प्रसन्नता ही 'सब सुख' है। उन्होंने कहा है—

करहु विचार जो सब दुख जाई।

(बीजक, रमैनी 23)

जब लग दिल पर दिल नहीं,तब लग सब सुख नाहिं।

जो तू चाहे मुझको, छाँड़ सकल की आस।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास॥

(बीजक, साखी 296, 298)

सद्गुरु कबीर की अंतिम साधना है 'सहज ध्यान' एवं 'सहज समाधि'। वे बीजक में कहते हैं—"हे साधको ! सहज ध्यान में रहो—सहज ध्यान में रहो। गुरु के वचनों में लीन रहो। तुम्हारा चित्त जड़ सृष्टि में मिला एवं विचरणशील है, उसे उससे निकालकर अपने ध्येय में स्थिर रखो।"

सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु, गुरु के वचन समाई हो॥1॥
मेली सृष्टि चरा चित राखहु, रहहु दृष्टि लौ लाई हो॥2॥

(बीजक, कहरा 1)

एक अ-सहज ध्यान होता है, दूसरा सहज ध्यान। असहज करते हैं बनावटी को तथा सहज कहते हैं स्वाभाविक को। कोई अपने चेहरे में पाउडर

लगा ले तो उसका यह सौंदर्य असहज है, बनावटी है। और यदि कोई अपने चेहरे को पानी-साबुन से धोकर रूमाल से पोंछ दे, तो चेहरे का सौंदर्य सहज एवं स्वाभाविक होगा।

साधक जब किसी महापुरुष के चित्र, नाद, विन्दु आदि को ध्यान का विषय बनाता है या यह कल्पना करता है कि मेरे चारों ओर परमात्मा व्याप्त है और ऐसी धारणा को ध्यान का विषय बनाता है, तो यह सब अ-सहज एवं बनावटी ध्यान है। क्योंकि यह सब मन की अवधारणा मात्र है। इसी को सगुण उपासना भी कह सकते हैं। यह ध्यान भी किसी न किसी श्रेणी के साधक के लिए कुछ न कुछ उपयोगी हो सकता है। इससे भी मन में कुछ प्रसन्नता एवं शांति आ सकती है, किन्तु जिससे भव-व्याधि की पूर्ण निवृत्ति एवं अनंत शांति की प्राप्ति हो वह है सहज ध्यान एवं सहज समाधि।

जब मन संकल्प रहित होकर शून्य हो जाता है तब सारी अवधारणाएँ समाप्त हो जाती हैं। चित्र, नाद, विंदु, ईश्वर अमुक लोक में है या सर्वत्र व्याप्त है—यह सब मन की अवधारणाएँ हैं। मन समाप्त होने पर ये सारी अवधारणाएँ खत्म हो जाती हैं, तब रह जाता है शुद्ध चेतन। यही है व्यक्ति का सहज स्वरूप। आपका या मेरा सहज स्वरूप चेतन है। चेतन मात्र स्थित हो जाना ही सहज ध्यान एवं सहज समाधि है।

साधना काल में संकल्प-शून्य पूर्वक अपने चेतन स्वरूप की स्थिति सहज समाधि है, और व्यवहार काल में खाते-पीते एवं व्यवहार करते हुए राग-द्वेष एवं हर्ष-शोक से सर्वथा रहित होकर प्रसन्न रहना सहज समाधि है। कबीर साहेब ने तो साखी ग्रन्थ में कहा है—

सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्हैं कोय।
जो सहजै विषया तजै, सहज कहावै सोय॥

व्यक्ति का सहज स्वरूप शुद्ध शांत चेतन है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेषादि तो बाहरी विकार हैं। इसलिए वे हमारा सहज स्वरूप नहीं हो सकते। इसीलिए जब क्षण मात्र के लिए भी काम-क्रोधादि मन में आ जाते हैं तब मनुष्य का नरक हो जाता है। हम काम, क्रोधादि में रहकर जीवन स्वाभाविक ढंग से नहीं बिता सकते, किन्तु निष्काम, करुणा, प्रेमादि में पूरा जीवन सहज बिता सकते हैं। सद्‌गुरु कबीर का प्रसिद्ध पद है—

संतो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप भयो जा दिन ते, सुरति न अंत चली॥
जहं जहं डोलों सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो पूजा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत, भाव मिटाओं दूजा॥
आंख न मूंदों कान न रूंधों, काया कष्ट न धारों।
खुले नैन हंसि हंसि पहिचानों, सुंदर रूप निहारो॥
सबद निरंतर मनुवा राता, मलिन वासना त्यागी।
उठत बैठत कबहुँ न छुटै, ऐसी तारी लागी॥
कहत कबीर सहज यह रहनी, सो परगट करि गाई।
सुख दुख से कोई परे परम पद, सो पद है सुखदाई॥

अर्थात—हे संतो, सहज समाधि ही भली है। जिस दिन से गुरु कृपा हुई, मैं सहज समाधि में मस्त हो गया। उस दिन से मन अलग नहीं चला। अब जीवन में सहज समाधि एवं स्वस्वरूप चेतन की स्थिति ही पूर्ण है। पूरा जीवन समाधिमय हो गया है। अब जहाँ-जहाँ डोलता हूँ मानो परिक्रमा करता हूँ और जो कुछ काम करता हूं मानो पूजा करता हूँ। जीवन इतना पवित्र हो गया है कि उसकी क्रियाएँ पूजा बन गयी हैं। जब लेटता हूँ मानो दण्डवत करता हूँ। अब शुद्ध स्वरूप चेतन से पृथक की सारी भावनाएँ, सारे राग सदैव मिटाता रहता हूँ। हठयोग के चक्कर में नहीं पड़ता, अतएव आँख, कानादि छिद्रों को मूंदकर बज्रासन लगाने की आवश्यकता नहीं, और निरर्थक घोर

तप कर काया को कष्ट देना उचित नहीं समझता हूँ। संसार के सारे प्राणियों को परमात्मा रूप समझकर खुले नेत्रों से उन सभी में उसी के सौंदर्य को देखता हूं। सारे सौंदर्यों का केन्द्रबिन्दु चेतन ही है। मैं प्राणियों के सारे सौंदर्यों में चेतन की ही महत्ता देखता हूँ। ज्ञान के शब्दों में मन निरन्तर लगा है। मन की मलीन वासनाओं का त्याग कर दिया है। अपने सहज चेतन स्वरूप की स्थिति में ऐसा ध्यान लग गया है कि उठते-बैठते एवं यावत काम करते हुए वह कभी छूटता नहीं है। कबीर देव कहते हैं कि यह सहज रहनी की स्थिति है जिसका मैंने खुलाशा करके वर्णन किया है। सहज समाधि एवं स्वरूपस्थिति रूप परम पद संसार के सुख-दुख से सर्वथा परे है, और वही अनंत सुख स्वरूप है।

जब सहज समाधि के अनंत सुख की मस्ती आती है तब साधक की दशा जो होती है उसका वर्णन करते हुए सद्गुरु कहते हैं—

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ।। टेक ।।
हीरा पायो गाँठ गठियायो, बार-बार वाको क्यों खोले ।।1।।
हलकी थी जब चढ़ी तराजू, पूर भई तब क्यों तोले ।।2।।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले ।।3।।
हंसा पाये मान सरोवर, ताल तलैया क्यों डोले ।।4।।
तेरा साहेब है घट माहीं, बाहर नैंना क्यों खोले ।।5।।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिल गये तिल वोले ।।

स्वरूपज्ञान, सहज ध्यान एवं सहज समाधि की मस्ती में जो मस्त हो गया, वह व्यर्थ बकवास क्यों करे। उसे हार-जीत की चिन्ता क्यों सताये। जो स्वरूपज्ञान का हीरा पा गया और उसे अपने हृदय की गांठ में बांध लिया, वह उसे बार-बार खोलकर दूसरे को दिखाने की चेष्टा क्यों करेगा। वह यह क्यों बताना चाहेगा कि मैं आत्मज्ञानी हूँ। जब तक साधक की बुद्धि हलकी होती है तब तक वह दूसरे से अपनी तुलना करता है। वह तब तक

अपने आप को बारंबार तौलता है कि मैं अमुक-अमुक से बड़ा या छोटा हूँ, किन्तु जब पूर्ण ज्ञान में स्थित हो गया, जब मन में पूर्ण शांति आ गयी, तब वह अपने आप की दूसरे से तुलना क्यों करेगा ! उसे छोटा-बड़ा होने का भास क्यों होगा ? उसकी तो सुरति (वृत्ति) रूपी कलवारिन शांति रूपी मदिरा को बिना तौले भारी मात्रा में पीकर मतवाली हो गयी है । उसे अहं-हीनत्व का भान कहाँ ? हंस मानसरोवर को पा गया, तब वह गंदे ताल-तलैया में क्यों भटकेगा ? अर्थात जब स्वरूपस्थिति का क्षीरसागर मिल गया तब मन विषय-वासनाओं के कीचड़ में क्यों पड़ेगा ? हे साधक ! तेरा साहेब, तेरा स्वामी, तेरा अपना आत्मदेव एवं चेतन स्वरूप ही है, फिर बाहर की चमक-दमक में क्यों भूलता है ! बाहरी मिथ्या रूप-सौंदर्य में मोहकर क्यों चकर-चकर ताकता है ? समस्त सौंदर्यों का केन्द्रबिन्दु अपना चेतन स्वरूप ही है । जो उसके बोध में निमग्न हो गया जो स्वरूपस्थिति की दशा में स्थिति हों गया, वह न बाहरी चमक-दमक में भूलता है और न किसी ईश्वर-परमात्मा को खोजने के चक्कर में पड़ता है । तेरे से अलग तेरा कोई ईश्वर नहीं । कबीर साहेब कहते हैं कि हे संतो ! साहेब तो तिल की ओट में छिपा था और वह मिल गया । हमारा भ्रम था कि परमात्मा हमसे अलग है और वह भ्रम दूर हो गया, बस हम स्वयं परमात्मा हैं । इस बोध की मस्ती में मस्त हो गया । अब कुछ बाकी नहीं ।[1]

---

1. श्री ईश्वर कृष्ण सांख्यकारिका में कहते हैं—

एवं तत्वाभ्यासान्नास्मि न मे
नाहमित्यपरिशेषम् अविपर्ययाद्विशुद्धं
केवलमुत्पद्यते ज्ञानम् ॥64॥

अर्थात—इस प्रकार तत्व-अभ्यास से, प्रकृति-पुरुष-विवेक से यह बोध की स्थिति आती है कि मैं न क्रियावान हूँ, न मेरा भोक्तृत्व है और न मैं कर्त्ता हूँ। यह भाव दृढ़ हो जाने पर कुछ बाकी नहीं रहता । इस प्रकार भ्रम दूर हो जाने से विशुद्ध केवल (असंगत्व) ज्ञान उत्पन्न होता है ।

उपसंहार

कबीर साहेब शिशु रूप में काशी के लहरतारा तालाब में जनश्रुति के अनुसार नीरू-नीमा जोलाहा दंपती को मिले और उन्हीं द्वारा पाले-पोषे गये। आप अपने छुटपन से ही प्रखरबुद्धि के एवं चिंतनशील थे। शायद आपने स्वामी श्री रामानन्द को अपना गुरु माना हो, परन्तु आपका वास्तविक गुरु स्वयं का विवेक था। आप आजीवन ब्रह्मचारी एवं विरक्त संत के रूप में रहे। आपने सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक तीनों क्षेत्रों में आंदोलन किया। आपने मानव मात्र की एक जाति बतायी, मानवता एक धर्म बताया तथा आत्मा को ही परमात्मा कहा।

अपने आप पर संयम की कड़ाई तथा दूसरे प्राणियों के प्रति दया तथा प्रेम का बर्ताव—इन दोनों आचरणों को आपने अपने जीवन में उतारा तथा समाज को इसी की सीख दी। आपके व्यक्तित्व में कवि, सुधारक, क्रांतिकारी आदि अनेक रूप उभरे, किन्तु आपका सबसे बड़ा रूप परमार्थ-लीन संत का है। इसीलिए आप भारतवर्ष में संतशिरोमणि के रूप में मान्य हैं और आपका यह रूप विश्व में विख्यात है।

सामान्य उपदेश

वाणी ऐसी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करै, आपौ शीतल होय ॥

मधुर वचन है औषधी, कटुक बचन है तीर।
श्रवण द्वार ह्वै सँचरे, सालै सकल शरीर ॥

शब्द शब्द बहु अन्तरे, सार शब्द मथि लीजै।
कर्हाहि कबीर जहाँ सार शब्द नहिं, धृग जीवन सो जीजै ॥

आपा तजै हरि भजै, नख सिख तजै विकार।
सब जीवन से निरबैर रहे, साधु मता है सार ॥

मानुष तेरा गुण बड़ा, मांस न आवै काज।
हाड़ न होते आभरण, त्वचा न बाजण बाज ॥

जीव मति मारो बापुरा, सबका एकै प्राण।
हत्या कबहुँ न छूटिहैं, जो कोटिन सुनो पुराण ॥

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित हुआ न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥

निन्दक नियरे बसाइये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी बिन साबुन, निरमल करे सुभाय ॥

कुल जारे कुल ऊबरै, कुल राखे कुल जाय।
राम निकुल कुल भेटिया, सब कुल गया बिलाय ॥

आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंघासन चढ़ि चले, एक बाँधे जात जंजीर ॥

चेत सबेरे बावरे, फिर पीछे पछिताय।
तोको जाना दूर है, कहैं कबीर बुझाय ॥

हमारे अन्य प्रकाशन

सरल शिक्षा	7.00
ढाई आखर	15.00
कबीर जीवनी	6.00
शाश्वत जीवन	6.00
सहज समाधि	4.00
तुलसी पंचामृत	6.70
संत सम्राट सद्गुरु कबीर	8.00
अंतर्संगीत	5.00
वैराग्य संजीवनी	3.33
स्त्री बाल शिक्षा	7.00
गुरु पारख बोध सटीक	4.00
बुद्धि विनोद	3.60
आप किधर जा रहे हैं ?	3.20
ज्ञान चौंतीसा	4.00
कबीर पर शुक्ल की और मेरी दृष्टि	3.60
राम से कबीर	3.20
भजनावली	3.60
बीजक प्रवचन	—
व्यवहार	3 00
अनंत की ओर	3.20
बुरहानपुर श्री कबीर निर्णय मंदिर के महापुरुष	1.60
कबीरपंथी जीवनचर्या	3.20
अहिंसा शुद्धाहार	3.00
संत महिमा	2.00
हितोपदेश समाधान	3.00
मैं कौन हूँ ?	1.60

Who am I ?	2.00
जीवन क्या है ?	1.60
कबीर कौन है ?	1.40
सरल बोध	1.60
आदेश प्रभा	1.00
कबीर संदेश	1.00
श्री राम-लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक	0·80
बहाना (श्री भावसिंह हिरवानी)	5·00
सन्त वचनामृत (अज्ञात)	0·60
ज्ञानगीता (श्री विष्णुदयालु दास)	1·40
विवेक कौमुदी (श्री रामजपी शर्मा)	1·60
पारख पद पुष्पांजलि (डा० नीलमणि)	0·80
जीवन गीत (श्री जीवन दास, सजीवन दास)	0·80
मोहभंग नाटक (श्री शुकदेव दास शास्त्री)	2·00

पुस्तक-प्राप्ति स्थान

पारख प्रकाशक कबीर संस्थान

प्रीतम नगर, सुलेम सराय, इलाहाबाद

कबीर दर्शन

लेखक : सन्त श्री अभिलाष साहेब

सद्गुरु कबीर देव के जीवन, दर्शन, कर्तृत्व, व्यक्तित्व—सम्पूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालने वाली सर्वाधिक प्रौढ़ कृति। अनेक अछूते पहलुओं का पहली बार उद्घाटन। सद्गुरु कबीर के सिद्धान्तों का तर्क-युक्त वैज्ञानिक विवेचन के साथ-साथ सम्पूर्ण कबीरपन्थ व उससे प्रभावित सन्त-मत का परिचय तथा कबीर दर्शन का सम्पूर्ण भारतीय दर्शनों से तुलनात्मक अध्ययन—पहली बार एक ही जिल्द में। पृष्ठ 800, पक्की जिल्द; मूल्य रु० 48·00।

बीजक पारख प्रबोधिनी सटीक

लेखक : सन्त श्री अभिलाष साहेब

सद्गुरु कबीर देव की प्रामाणिक रचना की प्रामाणिक टीका। शब्दार्थ, भावार्थ, व्याख्या एवं अन्तरकथाओं से संयुक्त। साथ में मनोहारी व गहन चिंतन-युक्त विस्तृत भूमिका तथा सद्गुरु कबीर के जीवन-दर्शन पर 49 विद्वानों के विचार। पृष्ठ 1100, पक्की जिल्द, मूल्य रु० 56·00।

रामायण रहस्य

लेखक : सन्त श्री अभिलाष साहेब

रामकथा की पृष्ठभूमि, रामकथा का आदि स्रोत, उत्पत्ति तथा विकास का अनुसंधानात्मक विवेचन। वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्म रामायण तथा रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन। विद्वतापूर्ण तलस्पर्शी समीक्षा। पृष्ठ 800, मूल्य 52 रुपये।

———